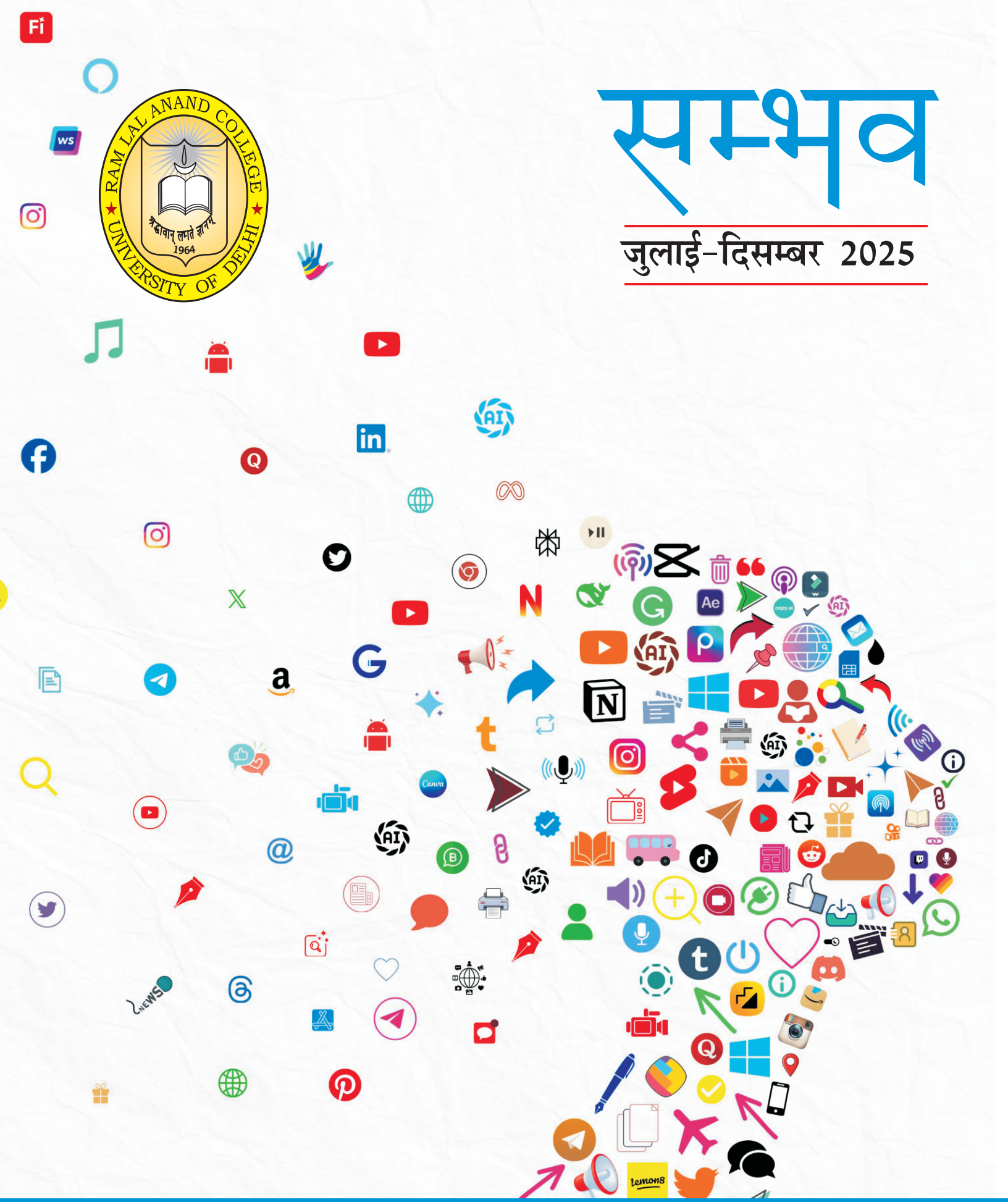
सम्भव

जुलाई–दिसम्बर 2025



हिंदी पत्रकारिता एवं जनसंचार, रामलाल आनंद महाविद्यालय

एक इंसान लिखूंगा



उत्कर्ष कुमार
बीजेएमसी
तृतीय वर्ष

मैं तुम्हें साड़ी से लिपटी
गहनों के भार से झुकी
जिम्मेवारियों के तले
घर की चारदीवारों में कैद
दबी हुई स्त्री नहीं लिखूंगा
यह तुम्हारी ललाट की बिंदी
कानों के झुमके
आंखों में काजल
पैरों में पायल
नाक की नथुनी
को लिखकर मैं
तुम्हारे चेहरे की सुंदरता का
बखान नहीं करूंगा
मैं तुम्हें इस समाज को
ललकारते हुए
उनकी बनाई किवदंतियों को
ध्वस्त करती परंपराओं को तोड़ते
माइक से गरजते
तर्क-वितर्क करते
सड़कों पर देर रात्रि
बेफिक्री से सफर करते
अपने ख्वाबों के साथ
आजाद पंछी की भांति
गगन में उड़ते लिखूंगा
मैं तुम्हें स्त्री लिखने से पूर्व
एक इंसान लिखूंगा।

अनुक्रमणिका

संपादकीय

सोशल मीडिया : कितना सोशल? कितना मीडिया ? : **राकेश कुमार** 1

न्यू मीडिया पर विशेष

जरूरत और आदत के बीच संतुलन बनाए रखिए : **आयुष प्रजापति** 2
मोबाइल और ऐप्स से पढ़ाई को बनाएं रोचक : **शिवांश सक्सेना** 4
रोजगार की परिभाषा बदल रही फीलांसिंग : **ईशान दुबे** 6
डिग्री है पहचान तो स्किल है कामयाबी : **अंकेश स्वर्ण** 7
जेनरेशन जेड की सोच : भोगवाद से परे संतुलित जीवनशैली : **नंदनी वार्ष्णेय** 9
दिखावे को सफलता का पैमाना मानना गलत : **स्नेहा** 11
डिजिटल युग में दोस्ती की नई चुनौतियां : **अमृत कुमार पांडे** 13
21वीं सदी का नया साइबर अपराध है डिजिटल अरेस्ट : **भारती बल** 15

शिक्षा

शिक्षा में विविधता से रुकेगा युवाओं का पलायन : **हर्षित** 17
गैप इयर ले रहे हैं तो योजना स्पष्ट होनी चाहिए : **दिव्या** 18
विद्यार्थियों के लिए खुला आसमान बनता है विश्वविद्यालय : **शाम्भवी** 20

विविध

मीडिया के जरिए भी लड़ा गया इजराइल-फिलिस्तीन युद्ध : **खुशी वशिष्ठ** 21
मनमानी से बचा सकती है वित्तीय साक्षरता : **उत्कर्ष कुमार** 23
बदलते दौर में युवाओं की मानसिक जद्दोजहद : **खुशी शाक्या** 25
योग, आयुर्वेद और अध्यात्म से बनती भारत की पहचान : **खुशबू** 26

किताब

खालिद हुसैनी के अफगान में महिलाओं का जीवन : **सोनिका** 28

कविता

एक इंसान लिखूंगा : **उत्कर्ष कुमार** फ्रंट पेज इनर
योग और जीवन : **दीपिका** 27



सम्भव

वर्ष : 19 अंक : 2
पूर्णांक–27
जुलाई–दिसम्बर 2025
दिसम्बर 2025 में प्रकाशित

संरक्षक मंडल

प्राचार्य
प्रो. राकेश कुमार गुप्ता

प्रभारी
प्रो. राकेश कुमार

संपादक मंडल

संपादक
प्रो. राकेश कुमार
डॉ. अटल तिवारी

छात्र संपादक
आस्था त्रिपाठी

उप-संपादक
श्वेता सिंह
अंशिका वर्मा

कवर
हर्षित

संपादकीय पता :
हिंदी, हिंदी पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग
रामलाल आनंद महाविद्यालय,
(दिल्ली विश्वविद्यालय)
बेनितो जुआरेज मार्ग, नई दिल्ली–110021
दूरभाष: 011–24112557
ईमेल : sambhavrla@gmail.com

स्वामी-प्रकाशक-मुद्रक
प्रो. राकेश कुमार गुप्ता
द्वारा बेनितो जुआरेज मार्ग
नई दिल्ली–110021 से प्रकाशित
और **यशस्वी प्रिंटर्स,** जी–2/122,
द्वितीय तल, सेक्टर–16,
दिल्ली–110089 से मुद्रित

'सम्भव' में प्रकाशित रचनाओं के विचार लेखकों के अपने हैं, उनसे संपादक मंडल का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

संपादकीय

सोशल मीडिया : कितना सोशल? कितना मीडिया?

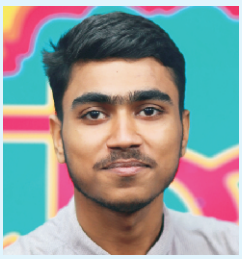


परम्परागत मीडिया ने अपने प्रारम्भिक समय से ही समय और समाज में घटित होने वाले घटनाक्रम और बदलते हुए सामाजिक समीकरणों को स्थान दिया है। हम मीडिया को समाज का आईना मानते रहे हैं। एक ऐसा आईना जिसमें समाज और मनुष्य अपना चेहरा देख सकते हैं। समाचार पत्र–पत्रिकाओं, रेडियो, टेलीविज़न और सिनेमा ने जनसमाज तक सूचना, मनोरंजन और ज्ञान को पहुँचाने में अपनी भूमिका निभाई है। ये सभी जनमाध्यम अपने–अपने समय में आए तकनीकी विकास का परिणाम हैं। तकनीकी विकास की इसी कड़ी में इंटरनेट का आगमन हुआ। इसके बाद से दुनिया में बहुत तेज़ी से बदलाव हुए। शिक्षा, चिकित्सा, यातायात और विज्ञान से लेकर मनुष्य समाज के सभी क्षेत्रों में इंटरनेट ने क्रांतिकारी परिवर्तन ला दिए। ऐसे में जनसंचार के माध्यम भी बदल गए। एक नए मीडिया का जन्म हुआ जो न तो सीधे कॉरपोरेट नियंत्रण था न ही सीधे सरकारी पहरेदारी में। यही समग्रता में सोशल मीडिया के नाम से जाना जाता है।

सोशल मीडिया के प्लेटफॉर्म्स ने लोगों को एक दूसरे से संवाद करने के अबाधित अवसर प्रदान कर दिए। फेसबुक, व्हाट्सएप, इंस्टाग्राम, टिकटॉक, ईमेल, यूट्यूब से लेकर गेमिंग व न्यूज़ पोर्टल्स तक अनेक ऐसे मंच पिछले दशकों में सामने आए। सोशल मीडिया के इन मंचों से देखते ही देखते करोड़ों लोग जुड़ गए। बच्चे, युवा, अधेड़ और बुजुर्ग सभी अपने निजी–सार्वजनिक जीवन, विचार, अनुभवों को सोशल मीडिया के मंचों पर साझा करने लगे। इसका प्रसार इतना अधिक हुआ कि इसे वैकल्पिक मीडिया भी कहा जाने लगा। यहाँ तक सब कुछ सही लगता है पर इसी के साथ–साथ अनेक डरावनी कहानियाँ भी सामने आने लगीं। कहीं साइबर फ्रॉड, कहीं ऑनलाइन बुलिंग, कहीं वीभत्स ट्रॉलिंग, कहीं साम्प्रदायिक विद्वेष तो कहीं पोर्न, देखते ही देखते जो मंच हमारे जीवन को आनंदमय और सहज बना रहे थे वो एक राक्षस की तरह सब कुछ लीलने लगा। इससे हमारे सामने एक बड़ा सवाल खड़ा हो गया है कि सोशल मीडिया कितना सोशल रह गया है?इसलिए हमें इसके लाभ–हानियों और चुनौतियों पर चर्चा करना आवश्यक प्रतीत हुआ। 'सम्भव' के इस अंक में हमारा प्रयास रहा है कि हम सोशल मीडिया के दोनों पक्षों पर चर्चा करें। यह हमारे लिए अत्यंत हर्ष का विषय है कि हिंदी पत्रकारिता एवं जनसंचार के विद्यार्थी निरंतर नए से नए विषयों पर लेख लिख रहे हैं। हम आशा करते हैं 'सम्भव' इसी प्रकार अपने विचारपरक लेखों के माध्यम से पाठकों को समृद्ध करता रहेगा।

प्रो. राकेश कुमार
संयोजक, हिंदी पत्रकारिता एवं जनसंचार

जरुरत और आदत के बीच संतुलन बनाए रखिए



आयुष प्रजापति
बीजेएमसी
तृतीय वर्ष

डिजिटल माध्यमों के प्रति हमारी एक शुरुआती समझ बनी हुई है। पल-पल खुद को अपडेट करते रहना है। इससे देश दुनिया के प्रति हमारी समझ बनती रहेगी। पेशेवर जिंदगी में हम सफलता की ओर बढ़ते रहेंगे। लेकिन एक दूसरा पहलू भी है। इसके कई स्तर पर नुकसान हैं। वह यह है कि डिजिटल माध्यमों से लगातार जुड़े रहना। इसका कारण सामाजिक मीडिया के तौर पर डिजिटल माध्यमों का विस्तार होना। सहभागिता, सक्रियता और लोकतांत्रिक मिजाज का होना है, लेकिन यह हमें उदासीन या तटस्थ नहीं रहने देते। पाठक, श्रोता और दर्शक के तौर पर हम इनकी सामग्री के उपभोक्ता होते हैं। इसके इतर हम उत्पादक और निर्माता होते चले आते हैं। यह दोहरे स्तर की सक्रियता है। एक ओर असीमित संभावनाओं का विस्तार है। दूसरी ओर हमारे भीतर ऊब, एकरसता, विचलन, अनिद्रा और असुरक्षा का भाव पनपता है। इन सबसे गुजरते वक्त हमारा मानसिक स्वास्थ्य और हमारी रचनात्मकता डूबती हुई दिखती है। जीवन के प्रति नीरसता जन्म लेने लग जाती है। इन सारी समस्याओं की एक जड़ है डिजिटल डिटॉक्स।



डिजिटल डिटॉक्स मतलब अपने रोजमर्रा के जीवन, व्यवहार और फैसले पर सोशल मीडिया को हावी न होने देना। उसके प्रभाव में आकर अपने बुनियादी स्वभाव से अलग और विचलित व्यवहार न करने देना है। इंटरनेट मामलों के विशेषज्ञ किम्बर्ली यंग (1994) के मुताबिक, 'लोगों से जुड़ने के लिए माध्यमों से दूर होना जरूरी है। मसलन-खाते वक्त उपकरण बंद कर देने चाहिए ताकि परिवार से जुड़ सकें।' रॉल्फ डॉबेली (2019) के अनुसार, 'लगातार डिजिटल माध्यमों से जुड़ने की यह आदत सिगरेट, शराब, गुटखे की तरह है। मानसिक तौर पर बीमार करने और हमारे भीतर की रचनात्मकता खत्म करने में यह प्रिन्ट और टेलीविजन से भी खतरनाक है। ऐसे में अगर सामग्री के स्तर पर सुधार कर लिया जाए या फिर उन मंचों की तलाश जारी रखें, जहां लगातार सामाजिक विकास, मानवाधिकार, मानवीय संवेदना और सरोकार की बातें की जाती हैं।' इस प्रकार सामग्री के विवेकपूर्ण चयन, प्रसारण और साझेदारी से इस नुकसान से बचा जा सकता है। डिजिटल डिटॉक्स की स्थिति में हम डिजिटल-सोशल मीडिया पर अपनी सक्रियता को लत नहीं मानते हैं बल्कि जरूरी कार्य समझ बैठते हैं। फिर उसकी गिरफ्त में जकड़ते चले जाते हैं। मानसिक रोग के शिकार होते चले जाते हैं। इसका कारण केवल सामग्री नहीं है। माध्यम, उसकी प्रकृति और उसकी मांग से है। इस स्क्रीन-स्क्रॉल करने का संबंध हमारी आदत से है। मनोविज्ञान की गिरफ्त में होने से है। यह हमारे भीतर ऊब और बेचैनी पैदा करती है। लेकिन मानवीय संबंधों और साझेपन का विस्तार भी इन्हीं प्लेटफॉर्म से हुआ है। सोशल मीडिया यूजर्स के संदर्भ में सोनाली अचार्जी स्वीकारती हैं कि वो जो और जैसे हैं, बिना सोशल मीडिया के वो वैसे नहीं दिख सकते। उनका आधा जीवन सोशल मीडिया में समाया हुआ है जिसे वो खुद से अलग नहीं कर सकते। इसी प्रसंग से मिलती जुलती मैट स्पायसर की इंग्रिड गोज वेस्ट की 2017 में आई फिल्म ठीक बैठती है। यह फिल्म

बताती है कि इसके बेतहासा प्रयोग से हम सामान्य दिखते हुए भी कैसे असामान्य हो चुके होते हैं। वहीं दूसरी ओर यह भी सच है कि ऑनलाइन दुनिया हमेशा खुशियों से भरी नहीं होती। यहां रहते हुए भी हम उदास होते हैं। लेकिन यदि इसका विकल्प या निजात का तरीका सोशल मीडिया पर सक्रिय होने के बजाय ऑफलाइन के भीतर ही ढूंढना शुरू करते हैं तो अपेक्षाकृत बेहतर स्थिति में होते हैं।

साल 2020 में अमेरिका में हुए एक अध्ययन में पाया गया है कि सोशल मीडिया पर सक्रिय जो लोग असुरक्षा भाव और अप्रासंगिक होने के भाव से लगातार बने रहते हैं, उनके कामकाज के तरीके और व्यवहार पर इसका नकारात्मक असर पड़ता है। फोमो यह वह मनोदशा है, जो उन्हें अक्षम बनाने की ओर ले जाती है। इसमें काम में गड़बड़ी से लेकर याददाश्त के कम होने की स्थिति बनती है।

बेहतर और बदलाव की संभावना के साथ प्लेटफॉर्म की सक्रियता कैसे आगे चलकर फोमो से जुड़ती चली जाती है, इसे ऑनलाइन बनाम ऑफलाइन के तौर पर देखने और अध्ययन करने का चलन शुरू हुआ है। पिछले कुछ वर्षों से मीडिया का न्यूज पैटर्न भी इसी दिशा की ओर सरकना शुरू हुआ है। यह ऐसे शीर्षक लगाते हैं, जिससे पाठक-दर्शक को गुजरते वक्त इसे नुकसानदेह मानना शुरू कर दें। देश के तमाम प्रतियोगी परीक्षाओं के परिणाम सम्बंधी खबर प्रकाशित करने के क्रम में इसकी गति और जोर पकड़ती चली जा रही है। मसलन सोशल मीडिया से दूरी बना समर्थ को मिली 12वीं रैंक, 12वीं बोर्ड टॉपर शुभम की सक्सेस स्टोरी : सोशल मीडिया से दूरी बनाई इसलिए बना स्टेट टॉपर, यूपी बोर्ड सोशल मीडिया से दूरी दिला सकती है परीक्षा में अच्छे नंबर, सोशल मीडिया बच्चों के दिमाग को बना रहा छोटा, क्या हमें भी अमेरिका की तरह सोचने की जरूरत है? सोशल मीडिया से दूरी, सफलता के लिए जरूरी, ऐसे शीर्षक के साथ छपी खबरें डिजिटल-सोशल मीडिया के यूजर्स के दिल दिमाग पर पड़ने वाले असर को समझने में मदद नहीं करतीं। महज सपाट ढंग से जनहित में निषेधात्मक संदेश जैसा असर पैदा करने की कोशिश जरूर की जाती है।

साल 2018 में 'हंस' ने सोशल मीडिया न्यू मीडिया नामक विशेषांक प्रकाशित किया। पत्रिका में इस क्षेत्र के विशेषज्ञ, पेशेवर और देश के अलग-अलग मीडिया में कार्यरत पत्रकारों के आलेख और साक्षात्कार छापे गए थे। इसी अंक में द लल्लनटॉप के संपादक सौरभ द्विवेदी ने सुझाव देते हुए कहा, 'नए माध्यमों की लोकप्रियता के बीच किताबें पढ़ने और ऑनलाइन गतिविधियों को नजरअंदाज करना ठीक नहीं होगा। इन प्लेटफॉर्म्स से दूरी बनाए रखना जरूरी है। इसके साथ की अतिसक्रियता ठीक नहीं है। यह हमारी रचनात्मकता और सोचने समझने की क्षमता पर नकारात्मक असर पैदा करती है। खूब पढ़ना चाहिए। किताबों को साथ बनाए रखना चाहिए।' इस प्रकार इन आलेखों में डिजिटल डिटाक्स की अनिवार्यता के पर्याप्त संकेत मिलते हैं।

तमाम अनियमितता को गहनता से देखने पर अध्येता माइक फेदेरस्टोन की एक बात ध्यान आती है 'आप उपभोक्ता संस्कृति को चाहे जिस भी तर्क से सही ठहराना चाहें, अंतिम बात यही है कि हम जितना ज्यादा उपभोग करते हैं। हर हाल में हम पृथ्वी और उसके संसाधनों का ही दोहन कर रहे होते हैं जोकि मानवीय हित में नहीं है।' इसे शारीरिक और मानसिक तौर पर देखें तो बिल्कुल ठीक वैसा ही है। गौरतलब है, यह सवाल रोजगार, अवसर और राजस्व की संभावना को देखते हुए जिस अनिवार्यता के साथ शामिल हो रहा है, उससे कहीं आगे का सवाल है। फिलहाल हम इस सवाल पर ठीक से पहुंच न पा रहे हों या फिर तात्कालिकता के आग्रह से नजरअंदाज किए जा रहे हों।



मोबाइल और ऐप्स से पढ़ाई को बनाएं रोचक



शिवांश सक्सेना
माइक्रोबॉयलोजी
चतुर्थ वर्ष

समय तेजी से बदला है। 1990 के दशक से अगर आधुनिकता को मापना चाहें तो भी यह समय तेजी से आगे बढ़ा है। एक समय स्कूल जाने वाले विद्यार्थियों के लिए किताबें और कुछ कॉमिक्स ही जीवन का सहारा थीं, आज वहां इतना बदलाव आ गया है कि अब मोबाइल के बिना जीवन असंभव सा लगता है। स्कूली शिक्षा से लेकर लगभग हर काम में मोबाइल का प्रयोग होता है। इस बदले जमाने में एक तकनीक इंसान के सबसे करीब आने वाली का नाम है मोबाइल। वह मनुष्य के जीवन का अभिन्न अंग बन गया है। मोबाइल के आगमन और प्रगति के साथ उसमें आए जरूरी ऐप्स ने उसकी सही पहचान दिलाई है। शुरुआती दौर में मोबाइल महज बातचीत के लिए प्रयोग होता था। एप्लीकेशन यानी ऐप्स ने उसको सही अंजाम तक पहुंचाया। ऐप्स एक तरह से मोबाइल में मौजूद वह तकनीक है जो हमारी सोच को सही मायने में पेश करती है। हमारी जरूरत को पूरा करती है। आज की पढ़ाई कलम और कॉपी तक सीमित नहीं रही। आज एक ही डिवाइस में नोट्स, किताबें, सवाल-जवाब, टाइमटेबल और डॉक्यूमेंट्स सब कुछ मोबाइल और उसकी एप्लीकेशन में मौजूद है।



क्लास में जब प्रोफेसर तेजी से बोलते हैं तो सब कुछ लिख पाना मुश्किल होता है। यहां वन नोट और गूगल जैसे ऐप्स मदद करते हैं। इनमें अलग-अलग विषय के लिए डिजिटल कॉपी बना सकते हैं। उसमें टेक्स्ट, चित्र और यहां तक कि ऑडियो रिकॉर्डिंग जोड़ सकते हैं। कई बच्चे फोन से ब्लैकबोर्ड की फोटो खींचकर सीधे वन नोट में डालते हैं ताकि बाद में साफ-साफ पढ़ सकें। अक्सर हम पढ़ाई करते हैं, लेकिन कुछ ही दिनों में सीखा हुआ भूल जाते हैं। इस समस्या का हल निकालने के लिए "लैशकार्ड ऐप्स काम आते हैं। यह दोनों ऐप्स स्पेस्ड रिपिटीशन नाम की तकनीक पर काम करते हैं। इसका मतलब कि हम समय-समय पर वही चीज दोहराते हैं, जो दिमाग भूलने वाला होता है। उदाहरण के लिए अगर हमने आज कोई शब्द याद किया तो ऐप वही शब्द दो दिन बाद, फिर पांच दिन बाद और फिर दस दिन बाद दोहराएगा। इस तरह वह शब्द लंबे समय तक हमारी याददाश्त में ताजा बना रहेगा। मेडिकल और लॉ के विद्यार्थी इन ऐप्स का बेहतर इस्तेमाल करते हैं। उन पाठ्यक्रम में अनेक तथ्य और टर्म्स होते हैं, जिन्हें रटना पड़ता है।

विद्यार्थी पढ़ाई शुरू करते हैं तो फोन पर नोटिफिकेशन आना शुरू हो जाते हैं। कभी व्हाट्सऐप, कभी इंस्टाग्राम तो कभी कोई गेम। ऐसे में स्थिरता बनाए रखना मुश्किल होता है। फॉरेस्ट नाम का ऐप इस समस्या का दिलचस्प समाधान देता है। पढ़ाई शुरू करने के साथ इस ऐप में एक पेड़ लगाते हैं। अगर ध्यान से पढ़ाई करें और फोन नहीं छेड़ें तो पेड़ बड़ा होगा। अगर बीच में ही ऐप छोड़कर सोशल मीडिया पर चले गए तो पेड़ सूख जाएगा। धीरे-धीरे फोन पर एक वर्चुअल जंगल तैयार हो जाता है, जो फोकस का सबूत होता है। यह

छोटा सा गेम बच्चों और बड़ों दोनों के लिए पढ़ाई को मजेदार बना देता है। अब आते हैं प्लानिंग और टाइम मैनेजमेंट पर। एक विद्यार्थी की बड़ी चुनौती यही होती है कि असाइनमेंट, प्रोजेक्ट, लेक्चर और परीक्षा सबका हिसाब-किताब ठीक से रखे। टू डू लिस्ट और गूगल कैलेंडर इस मामले में भरोसेमंद साथी हैं। टू डू लिस्ट हमें हर काम की सूची बनाने देता है। उसमें डेडलाइन जोड़ सकते हैं। जरूरत पड़ने पर रिमाइंडर सेट कर सकते हैं। वहीं गूगल कैलेंडर हमें पूरे हफ्ते और महीने की तस्वीर सामने रख देता है। उदाहरण के लिए अगर हमें अगले हफ्ते तीन असाइनमेंट जमा करने हैं और दो क्विज भी होने वाली हैं तो कैलेंडर पहले से अलर्ट कर देगा। ऐसे में आखिरी वक्त पर परेशान नहीं होना पड़ेगा। आज के समय में भाषा और लेखन विद्यार्थी का अहम हिस्सा है। कई बार अच्छे नोट्स या विचार होने के बावजूद उन्हें सही तरह से लिख नहीं पाते। आज का दौर एआई का है, जहां तकनीक ने अपनी सीमाएं बढ़ाई हैं। इसने सोचने, समझने और लिखने की क्षमता को बेहतर किया है। अब सोच को दृश्य में उतारना संभव है। आर्टीफीशियल इंटेलीजेंस हमारा साथी बन चुका है। डूलिंगो कुछ ऐसे ही ऐप्स का उदाहरण है, जो नई भाषा सीखने में मदद करने के साथ अंग्रेजी या किसी विदेशी भाषा की पकड़ मजबूत करता है। ग्रामरली जैसे टूल हमारे लिखे हुए वाक्यों को पढ़कर बताता है कि कहां गलती है, कहां सुधार कर सकते हैं और कौन-सा शब्द ज्यादा बेहतर होगा। अब बात करते हैं कंटेंट की। इंटरनेट पर बहुत कुछ है, लेकिन सब पर भरोसा नहीं होता। सब उपयोग के लायक भी नहीं होता। भारत सरकार ने इस दिशा में कुछ पहल की है। एनडीएलआई (नेशनल डिजिटल लाइब्रेरी ऑफ इंडिया) और स्वयं जैसे प्लेटफॉर्म बनाए हैं, जहां आईआईटी सहित कई संस्थानों के कोर्स मिलते हैं। वह हर विद्यार्थी पढ़ सकता है।



विद्यार्थियों के लिए एक और मुश्किल होती है डॉक्यूमेंट्स। कभी कॉलेज में आईकार्ड चाहिए। कभी स्कॉलरशिप के लिए आधार और मार्कशीट तो कभी इंटर्नशिप के लिए रिज्यूम। हर बार फाइल ढूंढना और प्रिंट निकलवाना होता है। सरकार का डिजिलॉकर और उमंग जैसे ऐप्स ने इस समस्या को काफी हद तक सुलझा दिया है। डिजिलॉकर में मार्कशीट, आधार और लाइसेंस जैसे डॉक्यूमेंट्स डिजिटल रूप में रख सकते हैं। इन्हें सरकार मान्यता देती है। उन्हें औपचारिक रूप में प्रयोग में ला सकते हैं। उमंग ऐप से हमें स्कॉलरशिप, प्राविडेंट फंड सहित अन्य सरकारी सेवाओं तक पहुंच मिल जाती है। इनके अलावा गूगल डॉक्स और माइक्रोसॉफ्ट 365 जैसे ऐप भी काम के हैं। कई विद्यार्थी अलग-अलग जगह से एक ही डॉक्यूमेंट एडिट कर सकते हैं। सबका काम एक साथ जुड़ जाता है। इस तरह एक साथ चीजें बनाना आसान हो जाता है। गणित और विज्ञान पढ़ने वाले विद्यार्थियों के लिए फोटोमैथ जैसे ऐप मददगार हैं, जो किसी सवाल को स्कैन करके उसका स्टेप-बाय-स्टेप हल दिखाते हैं। इस प्रक्रिया पर नजर डाली जाए तो स्मार्टफोन, विद्यार्थियों का सबसे बड़ा दोस्त बन सकता है और सबसे बड़ा दुश्मन भी। सार यह है कि हम इसे किस तरह इस्तेमाल करते हैं। अगर घंटों सोशल मीडिया स्क्रॉल करने की बजाय रोज 20-30 मिनट इन ऐप्स में लगाएं तो पढ़ाई आसान लगने के साथ रोचक भी होगी। धीरे-धीरे एक व्यवस्थित टाइमटेबल होगा। हर विषय की डिजिटल कॉपी होगी। सारे डॉक्यूमेंट सुरक्षित रहेंगे। एक कथन से इसे बेहतर तरीके से समझा जा सकता है 'काम का आदमी वही है, जो औजार को पहचान ले।' यही बात हर विद्यार्थी पर भी लागू होती है। स्मार्टफोन को केवल मनोरंजन का साधन मानने की बजाय अगर हम इसे अपने कॅरिअर का औजार बना लें तो काफी कुछ बदलाव आ सकता है। विद्यार्थी की सफलता की राह आसान हो सकती है।

रोजगार की परिभाषा बदल रही फ्रीलांसिंग



ईशान दुबे
बीकॉम ऑनर्स
द्वितीय वर्ष

तकनीक ने मनुष्य के जीवन के हर पहलू को छू लिया है। इंटरनेट की पहुंच ने सीमाओं को समाप्त कर दिया है। फ्रीलांसिंग ने एक नई क्रांति ला दी है, जिसने काम करने के तरीके और रोजगार की परिभाषा को पूरी तरह से बदल दिया है। पुराने समय में नौकरी का मतलब था कि किसी स्थायी कंपनी या संस्था में जाकर दिन भर काम करना। उसके बदले में नियमित वेतन पाना। लेकिन अब फ्रीलांसिंग के चलते लाखों लोग अपनी इच्छा से काम करते हैं। अपनी मेहनत के अनुसार कमाते हैं। यह आजादी और लचीलापन फ्रीलांसिंग में है। वही इसे नए पेशेवरों के लिए आकर्षक बनाता है। खास तौर से उन लोगों के लिए जो अपने हुनर को विकसित करना चाहते हैं। अपने पैशन को कॅरिअर में बदलना चाहते हैं।

फ्रीलांसिंग का मतलब केवल काम करने का नया तरीका नहीं बल्कि नौकरी की पुरानी सोच को चुनौती देना भी है। फ्रीलांसर विभिन्न प्रकार के प्रोजेक्ट्स पर काम कर सकते हैं। अनेक क्षेत्रों में अपने कौशल को बढ़ाने का मौका पा सकते हैं। इसी से यह युवाओं में लोकप्रियता हासिल कर रहा है। भारत में भी यह तेजी से बढ़ रहा है, जहां बड़ी संख्या में लोग कंटेंट राइटिंग से लेकर वेब डिजाइनिंग, डिजिटल मार्केटिंग, वीडियो एडिटिंग जैसे क्षेत्र में स्वतंत्र रूप से काम कर रहे हैं। भविष्य में इससे जुड़े अवसर और भी बढ़ने की संभावना है, क्योंकि तकनीक लगातार विकसित हो रही है। डिजिटल प्लेटफार्म फ्रीलांसर के लिए नए रास्ते खोल रहे हैं।

स्मार्टफोन का प्रचलन, तकनीकी शिक्षा को बढ़ावा और डिजिटल भुगतान सेवा की सुविधा है। इसी के साथ कोरोना महामारी ने भी लोगों की सोच को बदला है। लोगों ने पाया कि घर से भी काम किया जा सकता है। दफ्तर की नौकरी के साथ फ्रीलांसिंग अच्छा और स्थायी विकल्प बन सकती है। सरकार भी इसे बढ़ावा देने के लिए नीतियां बना रही है। देश में युवाओं का एक छोटा तबका ऐसा भी है जो छोटे शहरों और गांवों में रहते हुए अपनी सेवाओं को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर बेचकर अच्छा जीवन यापन कर रहा है। इससे उनके अनुभव और कौशल में बढ़ोतरी होती है। आर्थिक स्वतंत्रता आती है। इस आधुनिक युग में फ्रीलांसिंग युवाओं को न केवल रोजगार का जरिया बन रही है बल्कि उन्हें रचनात्मक, स्वतंत्र और जिम्मेदार नागरिक बनने के अवसर भी प्रदान करती है।

फ्रीलांसिंग की राह में चुनौतियां भी कम नहीं हैं। यह चुनौतियां इस क्षेत्र की नवीनता और लचीलेपन का हिस्सा हैं। नियमित वेतन न होना भविष्य की वित्तीय असुरक्षा पैदा कर सकता है। इसके अलावा बीमा पेंशन सहित अन्य सामाजिक सुरक्षा के अभाव में कई बार तनाव का सामना करना पड़ता है। वैसे सरकार सहित कई गैर सरकारी संस्थाएं फ्रीलांसरों के हित में काम कर रही हैं। भविष्य में अपेक्षा की जाती है कि यह क्षेत्र और भी व्यवस्थित होगा। सरकारी नीतियां फ्रीलांसरों के स्थायी विकास में सहायक बनेंगी। आने वाले समय में जिस तेजी के साथ आर्टीफीशियल इंटेलीजेंस और मशीन लर्निंग का विकास होगा उसमें परंपरागत नौकरियां कम होती जाएंगी। इसके विपरीत फ्रीलांसिंग का काम बढ़ेगा। कंपनियां स्थायी कर्मचारियों की जगह विशेषज्ञता आधारित काम पर ज्यादा भरोसा करेंगी। इससे रोजगार की प्रकृति में भी बड़ा बदलाव आएगा।

फ्रीलांसिंग में सफल होने के लिए व्यक्ति को निरंतर अपने कौशल को बढ़ाने की जरूरत होती है। उसे न केवल तकनीकी ज्ञान बल्कि बाजार की मांग, संवाद कौशल, समय प्रबंधन और डिजिटल प्लेटफार्मों के संचालन का भी ज्ञान होना चाहिए। इसके अतिरिक्त अपने काम को सही तरीके से प्रस्तुत करने के लिए ऑफलाइन पोर्टफोलियो बनाना, सोशल मीडिया का उपयोग करना और क्रिएटिव मार्केटिंग करना भी आवश्यक है। अंतिम बात यह कि इस युग में अपने हुनर की चमक बिखेरना हर किसी के लिए संभव हो गया है और फ्रीलांसिंग इसी का सबूत है। इसमें मेहनत करने वालों के लिए सीमाएं खत्म हो जाती हैं।

डिग्री है पहचान तो स्किल है कामयाबी



अंकेश स्वर्ण
बीजेएमसी
द्वितीय वर्ष

समाज के विकास में शिक्षा का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। शिक्षा ही व्यक्ति के व्यक्तित्व, चरित्र और जीवन को दिशा देने का काम करती है, पर आज के दौर में सवाल यह है कि शिक्षा का उद्देश्य क्या है? वर्तमान में पूरा विश्व औद्योगिक क्रांति के दौर से गुजर रहा है और इस दौर में यह बहस तेज हो गई है कि सफलता की कुंजी क्या है? डिग्री हासिल करना या कौशल सीखना।

अगर हम भारतीय समाज में डिग्री के पारंपरिक महत्व को जानें तो लंबे समय से इसका महत्व बढ़ा है। यह समाज में शैक्षणिक उपलब्धि के प्रतीक को दिखाने तक सीमित नहीं है बल्कि सामाजिक प्रतिष्ठा स्थापित करने में जरूरी भूमिका निभाता है। एक तरह से डिग्री यह सुनिश्चित करने में सहायता करती है कि व्यक्ति ने किसी खास विषय में प्रशिक्षण लिया है। उदाहरण स्वरूप मेडिकल की पढ़ाई किए बिना आपरेशन नहीं और कानूनी पढ़ाई के बिना वकालत संभव नहीं। हालांकि डिग्री अपने आप में पर्याप्त नहीं है। वर्तमान में भारत में हर वर्ष लाखों की संख्या में स्नातक और स्नातकोत्तर डिग्री हासिल कर विद्यार्थी निकलते हैं, लेकिन उनमें से बड़ी संख्या में विद्यार्थियों को रोजगार नहीं मिल पाता। इंडियन लेबर रिपोर्ट (2023) के अनुसार भारत के 65 प्रतिशत से अधिक युवा डिग्रीधारी हैं, पर वे रोजगार योग्य कौशल प्राप्त नहीं कर पाते। इसका अर्थ यह है कि डिग्री प्राप्त करना आवश्यक शर्त तो है, लेकिन इसे हम पर्याप्त शर्त नहीं कह सकते।



स्किल के संदर्भ में कहा जाए तो 21वीं सदी को स्किल ड्रिवन इकानॉमी कहा जाता है। आज सफलता का वास्तविक आधार ज्ञान का व्यावहारिक प्रयोग है। चाहे बात तकनीकी क्रांति की हो, स्टार्टअप की हो या फिर डिजिटल प्लेटफार्म की। यहां तकनीकी डिग्री के साथ कौशल पूर्ण होना आवश्यक हो जाता है। अगर विस्तार से बात करें तो तकनीकी क्रांति के अंतर्गत एआई, डाटा एनालिटिक्स, ब्लॉकचेन, विभिन्न प्रोग्रामिंग भाषा, साइबर सिक्योरिटी जैसे क्षेत्रों में सिर्फ डिग्री नहीं, कौशल होना चाहिए क्योंकि इनमें रोज कुछ न कुछ बदलाव होता रहता है। स्टार्टअप की बात करें तो आज के समय में युवा अपने नए विचारों और कौशल के बल पर सफल स्टार्टअप खोल रहे हैं। ओयो, जोमैटो, स्विगी जैसे उदाहरण साबित करते हैं कि स्टार्टअप डिग्री की अपेक्षा कौशल पर आधारित है। इसी कड़ी में डिजिटल प्लेटफार्म की बात की जाए तो आज यूट्यूबर, पॉडकास्टर, गेमर, ऐप डेवलपर बनकर लाखों की संख्या में लोग बिना डिग्री के सफल हो रहे हैं। अनेक यूट्यूबर ऐसे हैं, जो यह साबित कर रहे हैं कि डिग्री से ज्यादा कौशल जरूरी है। कौशल व्यक्ति की रोजगार क्षमता को बढ़ाता है। हालांकि यह धारणा भी गलत है कि स्किल और डिग्री में संघर्ष की स्थिति है। वास्तव में यह एक दूसरे के पूरक हैं। डिग्री व्यक्ति को औपचारिक मान्यता, आधारभूत



Skill-Based Hiring v/s
Degree-Based Hiring

ज्ञान और सामाजिक प्रतिष्ठा देती है। वहीं स्किल उसे रोजगार और आत्मनिर्भरता प्रदान करती है। उदाहरण के तौर पर एक मैनेजमेंट स्नातक विद्यार्थी के पास बीएमएस की डिग्री हो सकती है, लेकिन वह नेतृत्व, टीम वर्क और संचार कौशल से सफल प्रबंधक बन सकता है।

वर्तमान में डिग्रीधारी बेरोजगार शब्द चलन में देखा गया है, जो भारत में गंभीर समस्या है। देश के अधिकांश विश्वविद्यालयों में कौशल आधारित प्रशिक्षण देने की व्यवस्था नहीं है। यही वजह है कि युवा रोजगार की तलाश में भटक रहे हैं। वैसे इस स्थिति को सुधारने के लिए कई कदम सरकार ने उठाए हैं। प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना ने युवाओं को कई क्षेत्रों में प्रशिक्षित करके रोजगार के लायक बनाया। शिल्पकार प्रशिक्षण योजना में कुशल कारीगरों को विकसित करने के लिए व्यावसायिक प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है। वहीं जब हम इसके वैश्विक परिदृश्य की बात करते हैं तो विश्व के विकसित देशों ने शिक्षा को स्किल आधारित बनाया है। जापान और जर्मनी में अनुशासन, तकनीकी कौशल एवं व्यावहारिक प्रशिक्षण पर जोर दिया जाता है और अमेरिका में डिग्री की जगह स्किल और प्रोडक्ट पोर्टफोलियो को तवज्जो दी जाती है। हमारे देश को भी ऐसे मॉडल अपनाने की जरूरत है। आज कोई भी संस्थान उम्मीदवार से केवल डिग्री नहीं संबंधित क्षेत्र के विशिष्ट कौशल की भी अपेक्षा रखता है। साक्षात्कारों में आम तौर पर यह परखा जाता है कि उम्मीदवार के पास समस्या निवारण क्षमता, टीम वर्क, तकनीकी दक्षता जैसा कौशल है या नहीं। लिंक्डइन वर्क फोर्स रिपोर्ट 2024 के अनुसार भारत में सबसे ज्यादा मांग डिजिटल स्किल्स की है। इससे स्पष्ट है कि रोजगार पाने और कॅरिअर में आगे बढ़ने के लिए स्किल अनिवार्य है। वर्तमान सरकार की ओर से तय किए गए विकसित भारत 2047 के लक्ष्य को पाना है तो भारतीय शिक्षा व्यवस्था में आवश्यक बदलाव कर कौशल आधारित बनाना होगा। प्राथमिक से उच्च शिक्षा तक ट्रेनिंग, इंटर्नशिप, वर्कशॉप आदि के जरिए लोगों को तैयार करना होगा। विद्यार्थियों की मानसिकता को बदलते हुए उन्हें लाइफ लॉन्ग लर्निंग की तरफ मोड़ना होगा, क्योंकि कौशल परिवर्तनशील है। इसलिए स्किल और डिग्री को एक दूसरे के प्रतिस्पर्धी के रूप में नहीं बल्कि एक दूसरे के पूरक के रूप में देखना चाहिए। केवल डिग्री के सहारे व्यक्ति रोजगार प्राप्त नहीं कर सकता, पर अगर उसमें स्किल है तो वह आत्मनिर्भर और सफल बन सकता है। आने वाला भारत विकसित और आत्मनिर्भर तभी बनेगा, जब देश के युवाओं के पास डिग्री और स्किल का संयोजन होगा। इसलिए जरूरी यह है कि शिक्षा प्रणाली, समाज और अभिभावक यह समझें कि वह डिग्री के साथ-साथ स्किल डेवलपमेंट पर भी ध्यान दें। ऐसा करने से भी विकसित भारत का निर्माण होगा और भारत वैश्विक स्तर पर प्रतिस्पर्धी बनेगा। आज की वैश्विक परिस्थितियां भी यही संकेत देती दिख रही हैं कि शिक्षा को केवल डिग्री तक सीमित रखना अब पर्याप्त नहीं है। तेजी से बदलती दुनिया में काम करने के तरीके, तकनीक और अपेक्षाएं लगातार बदल रही हैं, ऐसे में व्यक्ति को स्वयं को समय के अनुसार ढालने की क्षमता भी विकसित करनी होगी। यह क्षमता कौशल के माध्यम से विकसित हो सकती है। जब कोई विद्यार्थी पढ़ाई के साथ-साथ सीखने, प्रयोग करने और नई चीजें अपनाने की आदत डालता है तब वह वास्तविक अर्थों में नई चुनौतियों के लिए तैयार होता है। समाज और परिवार की भूमिका भी यहां महत्वपूर्ण है, क्योंकि यदि युवा को प्रयोग करने और सीखने का अवसर मिलेगा, तभी वह अपनी क्षमताओं को पहचान पायेगा। जब ज्ञान और कौशल साथ-साथ चलते हैं, तब व्यक्ति न केवल अपने लिए बल्कि समाज और देश के लिए उपयोगी बन पाता है।

जेनरेशन जेड की सोच : भोगवाद से परे संतुलित जीवनशैली



नंदनी वार्ष्णेय
बीजेएमसी
द्वितीय वर्ष

आज की दुनिया पहले से कहीं अधिक तेजी से बदल रही है। नए ब्रांड्स, नए ट्रेंड्स और नए विकल्प हर दिन बाजार में सामने आते हैं। उपभोक्तावाद का माहौल हमें विश्वास दिलाने की कोशिश करता है कि जितनी अधिक चीजें हमारे पास होंगी हम उतने ही अधिक सफल और खुश होंगे। 21वीं सदी का दूसरा दशक जेनरेशन जेड का समय माना जा रहा है। जेनरेशन जेड यानी 1997 से 2012 के बीच जन्में वे युवा, जो डिजिटल युग के प्रतिनिधि माने जाते हैं। इनकी जीवनशैली कुछ अलग नजर आती है। रिपोर्ट्स बताती हैं कि दुनिया की आबादी का लगभग 25-30 प्रतिशत हिस्सा अब इसी पीढ़ी से है। इतनी बड़ी संख्या होने के कारण इनके आम जिंदगी से जुड़े चुनाव और जीवनशैली समाज, अर्थव्यवस्था और संस्कृति तीनों पर गहरा असर डालते हैं। मजेदार बात यह है कि यह पीढ़ी चमकदार उपभोगवाद से हटकर सादगी और संतुलित जीवनशैली की ओर बढ़ रही है।

माना जाता है कि संतुलित जीवनशैली पश्चिमी देशों से शुरू हुई, लेकिन आज यह पूरी दुनिया में अपनाई जा रही है। इसकी जड़ें नई नहीं हैं। बीसवीं शताब्दी में इसे कला और डिजाइन का हिस्सा माना गया था। जापान में जेन दर्शन और मैरी कोंडो की 'सफाई का जीवन बदलने वाला जादू' जैसी किताबों ने इसे जीवन की सरलता से जोड़ा। स्कैंडिनेवियन देशों में 'लागोम' और 'हीगे' जैसे दर्शन ने कम में संतोष और जीवन के संतुलन पर जोर दिया। स्कैंडिनेवियन शब्द दरअसल उत्तरी यूरोप के एक भौगोलिक और सांस्कृतिक क्षेत्र को दर्शाता है। डेनमार्क और नॉर्वे से निकला हीगे एक ऐसा दर्शन है, जो जीवन में सादगी और आत्मीयता को बढ़ावा देता है। इसका अर्थ है रोजमर्रा के पलों को सादा बनाकर अधिक आनंदमयी बनाना, जैसे कम रोशनी में किताब पढ़ना, परिवार के साथ समय बिताना या शांत माहौल में चाय का आनंद लेना। इस अवधारणा के अनुसार सुख वस्तुओं की अधिकता में नहीं बल्कि छोटे-छोटे पलों की गर्मजोशी में छिपा होता है। वहीं स्वीडन से आया लागोम संतुलन और संतुलित हो जाने के भाव को दर्शाता है। दोनों विचार मिलकर स्कैंडिनेवियन संस्कृति की उस मूल सोच को सामने रखते हैं, जिसमें सादगी और मिनिमलिज्म अहम माने जाते हैं। आज यह सोच केवल कला या इंटीरियर डिजाइन तक सीमित नहीं रही। यह पूरी जीवनशैली बन गई है, जो दुनिया भर के युवाओं, खासकर जेनरेशन जेड में नजर आ रही है। जेनरेशन जेड उपभोक्ता टिकाऊ और मिनिमल ब्रांड्स पर भरोसा करते हैं। वे मानते हैं कि उन्हें कम वस्तुओं की जरूरत है, पर अधिक अनुभवों की। यूरोप और जापान में यह सोच पहले से घर कर चुकी है। वहां के मिनिमलिस्ट आउटलेट्स और 'मुजी' जैसे ब्रांड उत्पाद बेचने के साथ एक जीवन दर्शन प्रस्तुत करते हैं। भारत भी इससे अछूता नहीं है। दिल्ली और बंगलुरु जैसे शहरों में थ्रिफ्ट स्टोर्स और सस्टेनेबल आउटलेट्स युवाओं के बीच लोकप्रिय हो रहे हैं, जहां एक तरीके से पुराने कपड़ों और वस्तुओं को नया जीवन मिल जाता है। मिनिमलिज्म का असर भौतिक चीजों के साथ डिजिटल दुनिया पर भी दिखने लगा है। डिजिटल नेटिव कहलाने वाली यह पीढ़ी सबसे पहले यह समझ रही है कि लगातार स्क्रीन टाइम मानसिक और शारीरिक दोनों तरह की थकान का कारण है। प्यू रिसर्च सेंटर 2022 की रिपोर्ट बताती है कि अमेरिका के लगभग 55 प्रतिशत जेनरेशन जेड युवा सोशल मीडिया का निश्चित समय तक ही उपयोग करते हैं। इसी कारण यूरोप और अमेरिका में डिजिटल डिटॉक्स रिट्रीट तेजी से बढ़ रहे हैं। लोग कुछ दिनों के लिए मोबाइल से दूरी बनाकर प्रकृति के करीब रहते हैं। भारत में युवा माइंड फुलनेस और मेडिटेशन ऐप्स जैसे तरीके अपना रहे हैं। डिजिटल डिटॉक्स रिट्रीट की खास बात यह कि डिजिटल डिटॉक्स रिट्रीट में मोबाइल और तकनीक से दूरी बनाकर

व्यक्ति प्रकृति के करीब रहता है, जिससे युवा पर्यावरण और जलवायु संकट के प्रति जागरुक होते दिख रहे हैं। संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम की रिपोर्ट चेतावनी देती है कि दुनिया में जिस तरह से चीजों का उत्पादन और उपभोग हो रहा है वह असंतुलित है। इसके चलते सामाजिक असमानता बढ़ रही है। यह स्थिति पर्यावरण के लिए बने संकट को और गंभीर बना रही है। जेनरेशन जेड फास्ट फैशन को ठुकरा कर सस्टेनेबल फैशन की ओर बढ़ रही है। फर्स्ट इनसाइट 2022 सर्वेक्षण के अनुसार 62 प्रतिशत जेनरेशन जेड खरीदार टिकाऊ ब्रांड्स से खरीदारी करना पसंद करते हैं।

मिनिमलिज्म का प्रभाव केवल क्षेत्रों तक सीमित न रहकर लगभग सभी क्षेत्रों को प्रभावित कर रहा है। मानसिक स्वास्थ्य की दृष्टि से भी मिनिमलिज्म जेनरेशन जेड के लिए सहारा बन रहा है। विश्व स्वास्थ्य संगठन की 2022 की रिपोर्ट बताती है कि दुनिया भर के लगभग 15 प्रतिशत किशोर मानसिक तनाव और चिंता का सामना कर रहे हैं। डिजिटल दबाव, प्रतिस्पर्धा और सामाजिक अपेक्षाएं इसे बढ़ा देती हैं। स्कैंडिनेवियन देशों में क्लटर-फ्री जीवनशैली अपनाकर युवाओं ने मानसिक शांति को साधा है। अमेरिका में मिनिमलिस्ट मेडिटेशन सेंटर और जापान में जेन फिलॉसफी युवाओं के बीच लोकप्रिय हो रहे हैं। भारत के महानगरों में भी डिक्लटर योर लाइफ जैसी वर्कशॉप तेजी से बढ़ रही हैं। इससे पता चलता है कि मिनिमलिज्म जीवन बदलने के साथ मानसिक स्वास्थ्य सुधारने का एक व्यावहारिक साधन भी है।



सामाजिक संबंधों में भी मिनिमलिज्म बदलाव देखने को मिलता है। 2025 जेनरेशन जेड और मिलेनियल सर्वेक्षण के अनुसार इनकी खुशी का बड़ा कारण गहरे रिश्ते हैं न कि सोशल मीडिया।

यूरोप और अमेरिका में 'फ्रेंड्स ओवर फॉलोवर' सरीखे अभियान लोकप्रिय हुए हैं। भारत के युवाओं ने भी धीरे-धीरे सोशल मीडिया डिटॉक्स को अपनाना शुरू किया है। आर्थिक दृष्टि से देखें तो मिनिमलिज्म ने 'शेयरिंग इकॉनामी' की ओर रास्ता खोला है। अमेरिका और यूरोप में अर्बन, एयरबीएनबी और जिपकर जैसी सेवाएं लोकप्रिय हुई हैं। इसमें वस्तुएं खरीदने के बजाय साझा की जाती हैं। भारत में ओला, उबर और एयरबीएनबी जैसी कंपनियां युवाओं को जरूरतें पूरी करने का नया और व्यावहारिक तरीका दे रही हैं। इससे खर्च घटता है। साथ ही संसाधनों का दुरुपयोग कम होता है।

किसी भी वस्तु के सकारात्मक के साथ नकारात्मक प्रभाव होते हैं। इसलिए यह कहना गलत होगा कि मिनिमलिज्म की राह पूरी तरह सरल है। आलोचक मानते हैं कि संसाधनों की कमी वाले अफ्रीका और एशिया जैसे महाद्वीपों में मिनिमलिज्म विकल्प नहीं मजबूरी है। पश्चिमी देशों में कई बार यह नया फैशन ट्रेंड बनकर रह जाता है, जहां महंगे मिनिमलिस्ट ब्रांड्स बेचकर कंपनियां उपभोक्तावाद का नया चेहरा प्रस्तुत करती हैं। इसके बावजूद जेनरेशन जेड का मिनिमलिज्म की ओर झुकाव उम्मीद जगाता है। यह पीढ़ी उपभोग के साथ बदलाव की वाहक बन सकती है। वैश्विक कंपनियां भी इसे समझ रही हैं। ग्रीन वर्क स्पेस, टिकाऊ उत्पाद और सस्टेनेबल कम्युनिटीज की ओर कदम बढ़ा रही हैं। भारत में इको विलेज और मिनिमलिस्ट कम्युनिटीज युवाओं के प्रयोग का हिस्सा बन रही हैं। यूरोप में फ्राइडे फॉर फ्यूचर आंदोलन और ग्रेटा थनबर्ग जैसे कार्यकर्ता इस पीढ़ी की वैश्विक सोच को आगे बढ़ा रहे हैं।

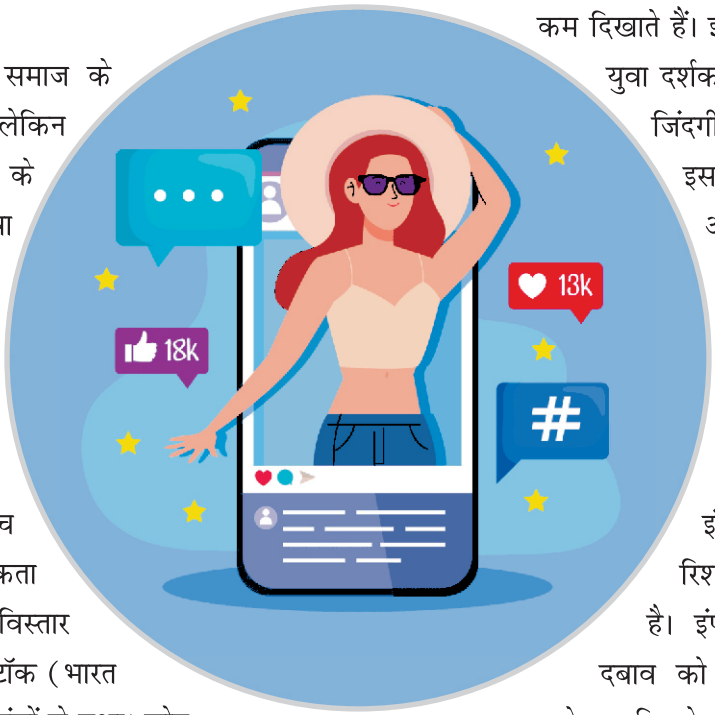
इसलिए जेनरेशन जेड और मिनिमलिज्म का रिश्ता एक ट्रेंड तक सीमित नहीं है। यह सोच बताती है कि भौतिक वस्तुओं की अधिकता खुशी की गारंटी नहीं होती। सादगी में एक अलग सुख होता है।

दिखावे को सफलता का पैमाना मानना गलत



स्नेहा
बीजेएमसी
द्वितीय वर्ष

आज के डिजिटल युग में सोशल मीडिया हमारी जिंदगी का अहम हिस्सा बन चुका है। इंफ्लुएंसर कल्चर ने एक अलग ही दुनिया खड़ी कर दी है। इंस्टाग्राम, यूट्यूब, फेसबुक, रील्स और शॉर्ट वीडियो प्लेटफॉर्म पर लाखों लोग अपने कंटेंट क्रिएशन के जरिए दूसरों को प्रभावित कर रहे हैं। उन्हें इंफ्लुएंसर कहा जाता है। वे लोग लाइफ स्टाइल, फैशन, विचार या आदतों से आम लोगों पर असर डालते हैं। पर, बड़ा सवाल यह है कि क्या यह ऑनलाइन चमक-दमक वाली जिंदगी वास्तविक जीवन से मेल खाती है, क्या इंफ्लुएंसर कल्चर युवाओं को सही दिशा में ले जा रही है या फिर यह उन्हें बनावटी जीवन की ओर धकेल रही है?



पहले खिलाड़ी और नेता समाज के आदर्श हुआ करते थे, लेकिन इंटरनेट और स्मार्ट फोन के बढ़ते चलन ने यह परिभाषा बदल दी। आज कोई भी व्यक्ति, चाहे वह छात्र हो, गृहिणी या साधारण कर्मचारी ही क्यों न हो, अगर उसके पास स्मार्टफोन, इंटरनेट और रचनात्मक सोच है तो वह इंफ्लुएंसर बन सकता है। इस कल्चर का विस्तार इंस्टाग्राम, यूट्यूब और टिकटॉक (भारत में बंद होने से पहले) जैसे मंचों से हुआ। लोग अपनी लाइफ स्टाइल, फिटनेस टिप्स, कॉमेडी वीडियो, रेसिपी, मेकअप ट्यूटोरियल्स, मोटिवेशनल स्पीच आदि साझा करने लगे। बहुत से युवा अपनी कला, गायन, नृत्य और अभिनय को सोशल मीडिया पर दिखाकर पहचान बनाने लगे। जो पहले छोटे शहरों या गांवों में छिपे थे, उन्हें मंच मिला। इंफ्लुएंसिंग अब सिर्फ शौक नहीं बल्कि पेशा बन गया है। ब्रांड्स अपने उत्पादों के प्रचार के लिए इंफ्लुएंसर्स को अच्छी फीस देते हैं, जिससे युवाओं के लिए आय का नया स्रोत बना है। कई इंफ्लुएंसर मानसिक स्वास्थ्य, महिला सशक्तीकरण, पर्यावरण संरक्षण और शिक्षा जैसे मुद्दों पर भी लोगों को प्रेरित करते हैं। पर, यहां एक बड़ा अंतर सामने आता है कि सोशल मीडिया और असली जिंदगी की दुनिया अलग है। ऑनलाइन में लोग अपनी लाइफ के केवल चमकदार हिस्से दिखाते हैं। जैसे महंगी कारें, आलीशान कैफे, ब्रांडेड चीजें, लेकिन उनके पीछे की असली मेहनत, संघर्ष या तनाव कम दिखाते हैं। इसका असर यह होता है कि युवा दर्शक सोचने लगते हैं कि उनकी जिंदगी इतनी परफेक्ट क्यों नहीं है, इससे तनाव, डिप्रेशन और आत्मविश्वास की कमी जैसी समस्याएं बढ़ती हैं। सोशल मीडिया की प्रसिद्धि स्थायी नहीं होती। आज का ट्रेंड कल भुला दिया जाता है, लेकिन वास्तविक जीवन में इंसान की पहचान उसके रिश्तों, मूल्यों और कर्मों से होती है। इंफ्लुएंसर कल्चर सामाजिक दबाव को भी बढ़ाता है। हर समय परफेक्ट दिखने की चाह, लाइक्स और फॉलोअर्स के पीछे भागना मानसिक स्वास्थ्य पर नकारात्मक असर डालता है। कई इंफ्लुएंसर केवल ब्रांडेड चीजें दिखाकर दूसरों को प्रभावित करते हैं, जबकि वास्तविकता कुछ और होती है। सोशल मीडिया फेक न्यूज और भ्रामक जानकारियों का माध्यम भी है। कुछ इंफ्लुएंसर बिना शोध किए स्वास्थ्य

और राजनीति जैसे विषयों पर राय देते हैं, जिससे लोग गुमराह होते हैं। यह कल्चर अक्सर यह संदेश देता है कि सफलता महंगे कपड़ों, गैजेट्स और यात्राओं पर निर्भर है, जिससे युवाओं में भौतिकता की दौड़ बढ़ती है।

असल में वास्तविक जीवन की जमीन पर टिके रहना जरूरी है। असली दुनिया में रिश्ते, दोस्ती, परिवार, शिक्षा, कॅरिअर और सामाजिक मूल्य हमें मजबूत बनाते हैं। एक सच्ची दोस्ती, पारिवारिक प्रेम और समाज में योगदान देने की संतुष्टि सोशल मीडिया की लाइक्स से अधिक मायने रखती है। असल जीवन हमें धैर्य, संघर्ष और विनम्रता सिखाता है, जबकि इंफ्लुएंसर कल्चर कई बार शॉर्टकट की ओर ले जाता है। इसके बीच एक उपाय है–संतुलन। सोशल मीडिया और इंफ्लुएंसर कल्चर को पूरी तरह गलत नहीं कहा जा सकता। समस्या तब होती है, जब हम इसे पूरी तरह वास्तविक मान लेते हैं। इसलिए जरूरी है कि सचेत होकर सोशल मीडिया का उपयोग करें। जो दिख रहा है उसे ही सच न मानें बल्कि अपनी क्षमताओं को पहचानें। ऑफलाइन जीवन को महत्व दें। परिवार और दोस्तों के साथ समय बिताएं। प्रकृति से जुड़ें और किताबें पढ़ें। ऐसे में प्रचलित हुआ डिजिटल डिटॉक्स शब्द मानसिक स्वास्थ्य के लिए बेहद उपयोगी और कारगर साबित होता है।

अंत में कहा जा सकता है कि इंफ्लुएंसर संस्कृति ने युवाओं को अपनी प्रतिभा और विचारों को दुनिया के सामने लाने का अवसर दिया है। इसने कई लोगों को आत्मनिर्भर और प्रसिद्ध बनाया है, लेकिन इसके साथ दिखावा, प्रतिस्पर्धा और कृत्रिम जीवन की प्रवृत्ति को भी बढ़ावा दिया है। सोशल मीडिया पर दिखने वाली भव्यता और पूर्णता हमेशा सच नहीं होती। इसलिए आवश्यक है कि हम आभासी आकर्षण और वास्तविक जीवन के मूल्यों के बीच संतुलन बनाए रखें। लाइक्स और फॉलोअर्स से अधिक महत्व अपने अनुभवों, संबंधों और सच्ची खुशियों को देना चाहिए। वास्तविक जीवन की सफलता मेहनत, सादगी और ईमानदारी पर आधारित होती है। यदि हम सोशल मीडिया का प्रयोग समझदारी और संयम के साथ करें तो यह जीवन को समृद्ध बना सकता है। एक सच्चा, संतुलित और सार्थक जीवन जीने की दिशा में आगे बढ़ा सकता है।



डिजिटल युग में दोस्ती की नई चुनौतियाँ



अमृत कुमार पांडे
बीजेएमसी
द्वितीय वर्ष

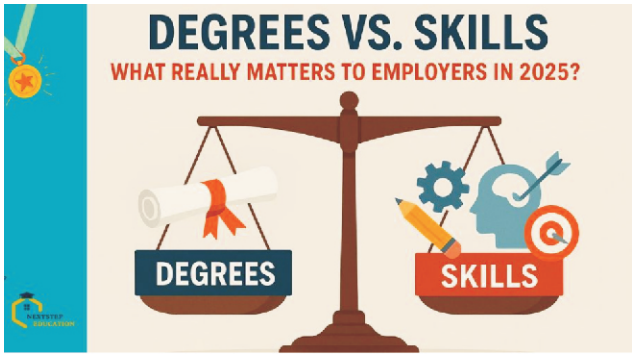
तकनीकी युग में होने वाले आविष्कारों से बदलाव होते चले गए। समाज में क्रियाशीलता ने अलहदा ढांचा बना लिया। समाज बदला और न जाने कब हम बदल गए। औद्योगिक क्रांति हमारी नजरों के सामने से गुजरी, जिसके हम प्रशंसक बनकर रह गए। यह किसी को पता नहीं था कि यह बदलाव कृष्ण–सुदामा जैसी मित्रता को बदल कर रख देंगे। दोष किसे दिया जाए। हम खुद अब कागज–कलम से बचते हैं। किसी अच्छे मित्र से यदा कदा बात करनी होती है तो टेक्स्ट मैसेज का सहारा लेता हूं। जाना भी नहीं पड़ता। संवाद भी काम भर का हो जाता है। मित्र भी अब मुझसे कोई दिली फरियाद नहीं करते। किसी अश्क के बूंदों की कसमें नहीं खिलाते।

समय बदल गया है। 21वीं सदी का तीसरा दशक चल रहा है। अब मैत्री वाले संबंधों में रूहानियत नहीं रही। दिल फेंक रिश्ते भी कायम नहीं रहे। अब समझदारों के दरमियान सन्धि हो रही है। मित्रता बीते जमाने की बात मान सकते हैं। अब वे मित्र मिलते हैं, जो मित्र होने की शर्तों पर दिखावा भर करते हैं। मित्रों में भाई की कल्पना, जो अतीत में हुआ करती थी, अब नहीं रही। वह आंखों से ओझल हो गई है। आज के दौर में कोई हमजोली ऐसा मिले, जो वायदे करने की जगह रिश्ते सींचना जानता हो।

कॉरपोरेट ने मित्रों को वर्कर या कलीग बना दिया है। हर लहजा मतलबी चादर ओढ़े शामिल होता है। महफिल, गोष्ठी और मैत्री बैठकों को क्या कहा जाए। इस डिजिटल युग में आदर्श मित्रता की कसौटी के मायने अलग होने चाहिए। तुमने पहले कॉल नहीं किया, तुमने पहले मैसेज नहीं किया से बचना जरूरी है। यह वह दकियानूसी सवाल हैं जिनकी वजह से मित्र अजनबियों में परिवर्तित हो सकते हैं।

मैत्री संबंधों ने हमारी बदलती प्रवृत्तियों को अपनाया है। चाहे वह डिजिटल रूप में ही क्यों न हों। हां, ऐसा जरूर है कि हम सब कुछ खत्म हो जाने के बाद भी उचित होने के अभिनय कर पाने में पारंगत हो गए हैं। हम अपनी पहचान अब दोस्ती में नहीं खोज पाते बल्कि अंजाम ने भी कुछ ऐसी ही वकालत की है। यह हमारे मानवीय समझ की कहीं न कहीं पराकाष्ठा की ओर इशारा करता है। यह दिखाता है कि हम संवेदनहीन नहीं हो पाए, लेकिन बेरुखी से भरे पड़े हैं। हमें यह फर्क नहीं पड़ रहा कि हमारा मीत किस दर्द को दिल में दफनाए हमसे

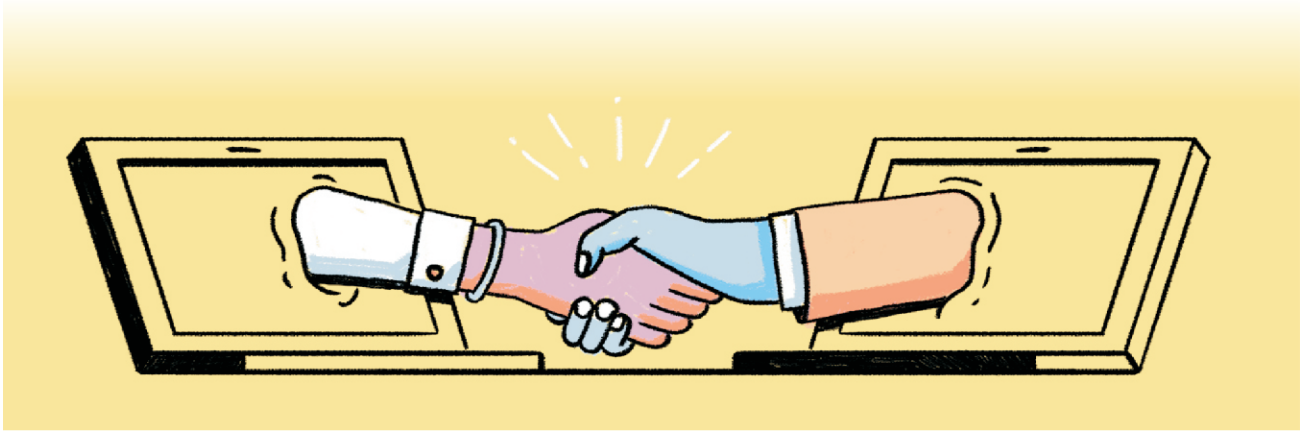




मुलाकात करने हंसते हुए आ रहा है। यह जरूरी नहीं रहा कि हम अपने साथी के साथ मुरझाए फूलों को शादाब करने के अहम मसले को साझा करें या शबनमी ख्याल की नर्मियत को बेबाकी भरे लहजे में उससे कहें। हम अब कृष्ण की तरह सुदामा की मित्रता को तराशते नहीं बल्कि तुम सुदामा नहीं हो, बस खारिज कर देते हैं। हम दोनों में ही वह नफासत नहीं रही, जो कभी कलेजे को ठंडक पहुंचाया करती थी।

समय की गोद में सिर्फ अफसाने नहीं पलते। इन अफसाने के जिक्र ए पहल में खुद–ब–खुद दोस्त आ ही जाते हैं या मीतों के बिना कहें कि कोई अफसाना अफसाना नहीं। पर इस युग में कई नए शिकवे होने लगे हैं। इन शिकवों का वजूद ताल्लुक से कम दूरी से ज्यादा है। फिर भी एक जैसी सांसें ले रहे हैं। खुद को एक दूसरे का कह पाने में सक्षम हैं। वे दूर के इंटरनेट वाले दोस्त हैं। इनकी दोस्ती का आधार अब इंस्टाग्राम पर एक दूसरे को रील भेजकर मुकम्मल है। यह म्यूचुअल लाइक्स, कमेंट्स और शेयर्स पर टिकती है। मुझे यह मलाल नहीं कि युग से लड़कर अपनी दोस्ती को संभालने में जो मेहनत मेरे कई मित्रों ने की वह जरा और दुरुस्त हो जाती। असल बात यह कि इस नवीन युग की मित्रता एक छुपा हिस्सा भी है। इस छिपे हिस्से में बहुत सारे जज्बातों को समेट कर बंद कर दिया गया है। एक थैले के रूप में। जब किसी मौके पर इसकी जरूरत पड़ती है, इसे खोल दिया जाता है। कभी कभी जज्बात बाहर आते हैं तो कभी इसकी खुशबू भर से काम चल जाता है। एक तबका हमजोलियों का ऐसा भी है, जो इस कला में माहिर है या यूं कह लीजिए कि इस फन का फनकार है। वह यह सब पहचानता है कि पोटली कब, कितनी और क्यों खोलनी है।

नवाचार की इस लहर में आर्थिक संप्रेषण से जुड़ी सामाजिक पहेलियों की गुत्थी को सुलझा पाने की कोशिश में मित्रता ने अपने आयाम नहीं बदले बल्कि खुद को फिट कर पाने के लिए खुद का नवीनीकरण कर दिया है। आजकल समझ नहीं आता कि कोई रिश्ता मित्रता है कि वैचारिक गठबंधन करने के लिए किया गया निर्जीव फैसला। हर रिश्ते की ही तरह आजकल की मित्रता की अपनी फितरत है और उस फितरत के अपने करिश्मे हैं। कहीं–कहीं तो कालिख का रंग इतना गहरा है फितरत पर कि इसे मलीन कर पाने का विचार अब ख्वाब ही है। कहीं ऐसा भी जान पड़ता है कि कुलीन नजर आने वाले लोग मैले हैं, वह छोटे हृदय वालों की सूची में अव्वल हैं। तत्कालीन मैत्री संबंधों में अच्छाई बहुत है, पर मौज का अकाल है। यह तय करना होगा कि मायने बदलने और दिल के बदल जाने में एक समूचा फर्क है। उस फर्क की अहमियत को महसूस करने की नितांत संभावना हमारे भीतर से आवाज दे रही है। चीख रही है। अब हमें आगे बढ़कर उसे ढांढस बंधाना होगा, हाथ बढ़ाना होगा। उसे और उसके लफ्जों को बेदिली की दृष्टि से नहीं बल्कि दिलकश मंजर जैसा देखना होगा।



21वीं सदी का नया साइबर अपराध है डिजिटल अरेस्ट



भारती बल
बीजेएमसी
द्वितीय वर्ष

मानव जीवन में अपराध हमेशा से समाज की स्थिरता और शांति के लिए चुनौती रहा है। इतिहास को देखा जाए तो अपराध का स्वरूप मुख्य रूप से शारीरिक हिंसा, चोरी, डकैती, लूटपाट, हत्या और धोखाधड़ी तक सीमित रहा है। लोग घर, परिवार और व्यवसाय की सुरक्षा के लिए ताले, दरवाजे, पहरेदार पर निर्भर रहते थे। लेकिन जिस तरह से तकनीक ने विकास किया, अपराध का स्वरूप बदल गया। 21वीं सदी में सूचना और प्रौद्योगिकी ने जीवन के हर क्षेत्र में जगह बना ली है। अपराधियों ने भी इस तकनीक को नए हथियार के रूप में इस्तेमाल करना शुरू कर दिया है। अब अपराधी घर बैठे मोबाइल से इंटरनेट के जरिए लाखों-करोड़ों रुपए की ठगी कर रहे हैं। इन्हीं नए साइबर अपराध का नया रूप है डिजिटल अरेस्ट।



21वीं सदी में इंटरनेट, सोशल मीडिया, क्लाउड कंप्यूटिंग, आर्टीफीशियल इंटेलीजेंस जैसी तकनीक जीवन का हिस्सा बन चुकी है। मोबाइल बैंकिंग, डिजिटल वॉलेट, यूपीआई और ऑनलाइन सेवाओं ने वित्तीय लेन-देन को सेकेंडों में संभव बना दिया है। इस डिजिटल क्रांति ने मनुष्य के जीवन को काफी कुछ बदल दिया है। समय की बचत की है। एक तरफ तकनीक, विकास और सुविधा मिली वहीं दूसरी ओर अपराधियों को नए अवसर मिल गए। आज धोखाधड़ी, ऑनलाइन छल और फर्जी लिंक से आपराधिक घटनाएं हो रही हैं। अपराधी डराने-धमकाने के लिए फर्जी पहचान और डीपफेक तकनीक का सहारा लेते हैं। इससे आर्थिक ठगी के साथ पीड़ित के मानसिक और सामाजिक जीवन पर गहरा असर पड़ता है। कुछ मामलों में देखा गया है कि पीड़ित डर और तनाव के कारण मानसिक असंतुलन का शिकार हो जाता है। कुछ आत्महत्या करने तक को मजबूर हो जाते हैं। इस तरह यह अपराध धन की हानि के साथ जीवन और समाज दोनों के लिए गंभीर खतरा बन जाता है।

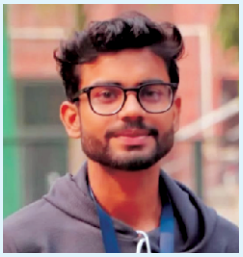
डिजिटल अरेस्ट साइबर फ्रॉड है, जिसमें अपराधी स्वयं को किसी सरकारी एजेंसी- पुलिस, सीबीआई, एनआईए, ईडी-का अधिकारी बताकर पीड़ित को फंसाते हैं। वह फोन या वीडियो कॉल के जरिए पीड़ित को बताते हैं कि उसका नाम किसी गंभीर अपराध, मनी लॉन्ड्रिंग अथवा अवैध गतिविधि से जुड़ा है। आगे कहते हैं कि जांच पूरी होने तक उसे डिजिटल रूप से गिरफ्तार किया जा रहा है। अपराधी पीड़ित को मानसिक दबाव में रखकर उसके बैंक खाते से पैसे निकलवाते हैं। इस दौरान पीड़ित को लगातार वीडियो कॉल पर निगरानी में रखा जाता है। किसी से संपर्क करने की अनुमति नहीं दी जाती। अपराधी नकली दस्तावेज, फर्जी सरकारी पहचान-पत्र



और डिजिटल सील दिखाकर अपनी पहचान असली साबित करने की कोशिश करते हैं। इस धोखे के चलते आम नागरिक आसानी से उनके जाल में फंस जाता है। इसमें अपराधियों की सबसे बड़ी ताकत पीड़ित के अंदर भय और भ्रम पैदा करना होता है। वह जानते हैं कि आम नागरिक सरकारी एजेंसियों के नाम से डर जाते हैं। वह कानूनी झंझट से बचना चाहते हैं। वह इसी मनोवैज्ञानिक कमजोरी का फायदा उठाकर अपने शिकार को गिरफ्तारी वारंट की धमकी देते हैं। दबाव के कारण पीड़ित उनकी हर शर्त मान लेता है और अपनी कमाई गवां बैठता है। पिछले कुछ समय से डिजिटल अरेस्ट के मामले तेजी से बढ़े हैं। साइबर अपराध विशेषज्ञों के अनुसार, वर्ष 2024–25 के दौरान इन मामलों में बड़ी वृद्धि दर्ज की गई। दिल्ली, मुंबई, बंगलुरु, हैदराबाद और चेन्नई जैसे शहरों में इसका असर विशेष रूप से देखा गया। कुछ मामलों में विदेशों से संचालित गिरोह भारतीय नागरिकों को निशाना बनाते हैं। लोगों के इसमें फंसने की बड़ी वजह उनमें साइबर फ्रॉड और डिजिटल सुरक्षा के प्रति जानकारी की कमी है। अधिकांश लोग यह नहीं जानते कि सरकारी एजेंसी वीडियो कॉल पर गिरफ्तारी नहीं करती और न किसी नागरिक से सीधे पैसे मांगती हैं। यह स्थिति डिजिटल शिक्षा और साइबर जागरुकता की कमी को दिखाती है। वैसे सरकार और साइबर सुरक्षा एजेंसियां डिजिटल अरेस्ट जैसे मामलों से निपटने के लिए प्रयास कर रही हैं। पिछले कुछ वर्षों में साइबर अपराध में विशेष रूप से डिजिटल अरेस्ट से जुड़ी शिकायतों में वृद्धि दर्ज की गई है। उपलब्ध आंकड़ो के अनुसार, वर्ष 2021 में कुल 1,35,242 शिकायतें दर्ज की गईं जो वर्ष 2022 में बढ़कर 5,14,741 हो गईं। वही वर्ष 2023 यह संख्या 11,31,221 तक पहुंच गईं। इन बढ़ते मामलों को देखते भारत सरकार ने गृह मंत्रालय के अंतर्गत भारतीय साइबर अपराध समन्वय केन्द्र की स्थापना की, जो साइबर अपराध से संबंधित प्रतिक्रिया तंत्र को सुदृढ़ करने, क्षमता निर्माण, निगरानी और विभिन्न एजेंसियों के बीच खुफिया सूचनाओं के आदान–प्रदान का समन्यव करता है। यह पुलिस को तकनीकी सहायता और प्रशिक्षण भी देता है। सरकार ने राष्ट्रीय साइबर अपराध रिर्पोटिंग पोर्टल की शुरूआत भी की है जिसके तहत साइबर अपराधों की ऑनलाइन माध्यम से शिकायत दर्ज हो सकती है। साइबर क्राइम सेल, राष्ट्रीय साइबर हेल्पलाइन और साइबर जागरुकता अभियान के जरिए लोगों को शिक्षित किया जा रहा है। राज्यों में विशेष कार्यशालाएं और प्रशिक्षण कार्यक्रमों में नागरिकों को बताया जाता है कि यदि कोई व्यक्ति स्वयं को सरकारी अधिकारी बताकर वीडियो कॉल करे तो तुरंत साइबर हेल्पलाइन नंबर 1930 पर शिकायत दर्ज कराएं। इस हेल्पलाइन के माध्यम से समय पर की गई शिकायत से धन की हानि को रोका जा सकता है। डिजिटल लेन–देन को सुरक्षित रखने के लिए साइबर सुरक्षा उपाय जैसे दो स्तरीय प्रमाणीकरण और सुरक्षित पासवर्ड का प्रयोग करें। इन प्रयासों को उद्देश्य नागरिकों को सतर्क करना और उन्हें साइबर अपराधियों के जाल में फंसने से बचाना है।

डिजिटल अरेस्ट भारत के साथ पूरी दुनिया के लिए चिंता का विषय बना है। जिस तरह से तकनीक का विकास हो रहा है उसी तरह से अपराधी भी नए तरीके ढूंढ रहे हैं। इसलिए हर नागरिक को समझना होगा कि डिजिटल सुरक्षा केवल सरकार या पुलिस की जिम्मेदारी नहीं है बल्कि हर व्यक्ति को जिम्मेदार बनना होगा। जब तक नागरिक स्वयं सतर्क होकर तकनीक का सावधानी के साथ प्रयोग नहीं करेंगे तब तक डिजिटल अरेस्ट जैसे अपराध को रोक पाना कठिन होगा।

शिक्षा में विविधता से रुकेगा युवाओं का पलायन



हर्षित
बीजेएमसी
तृतीय वर्ष

पिछले कुछ वर्षों से भारत की युवा पीढ़ी विदेशों की तरफ अधिक रुख कर रही है। अगर गौर करें तो पाएंगे कि उनके आस-पास के अनेक युवा शिक्षा हासिल करने के लिए विदेश चले गए हैं या फिर जाने की तैयारी में हैं। युवाओं की इस सोच के पीछे अनेक कारण हैं। विदेशों में जहां शिक्षा के साथ अन्य गतिविधियों पर भी ध्यान दिया जाता है वहीं भारत में शिक्षा युवाओं के लिए एक प्रतिस्पर्धा और दबाव का कारण बन रही है। डॉक्टर और इंजीनियर बनने की परीक्षा हो या सरकारी नौकरी की सभी परीक्षाएं। इसके लिए सरकारी कॉलेजों की कमी है। निजी कॉलेजों की महंगी फीस, कोचिंग, कम सीटों के लिए बहुत सारे प्रतिभागी, माता-पिता और शिक्षकों के साथ समाज का दबाव होता है। इस तरह के अनेकानेक कारणों से आज की युवा पीढ़ी विदेश जाकर अपना भविष्य संवरते देखना चाहती है।

भारत ने जनसंख्या के मामले में चीन को पछाड़ दिया है। रोजगार के कमतर अवसरों के चलते युवा विदेश की ओर उन्मुख हैं। यह सिर्फ उच्च स्तरीय डिग्री प्राप्त युवाओं की बात नहीं है। बल्कि निम्न स्तरीय शिक्षा प्राप्त और गरीब युवाओं की की भी बात है। अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया, जर्मनी, कनाडा आदि उच्चस्तरीय शिक्षा प्राप्त युवकों को अधिक वेतन वाले रोजगार का अवसर देते हैं। रोजगार के अवसर के साथ आर्थिक संपन्नता, जीवन की सुरक्षा और कई प्रकार की उच्चस्तरीय सुविधाओं के कारण युवा वर्ग विदेश से भारत की ओर कम ही रुख करता है। इसमें अपवाद भी शामिल हैं। जिन्होंने विदेश से लौटकर भारत के विकास में योगदान दिया है। यदि भारत में युवाओं को शिक्षा, उपलब्धियों एवं रुचि के अनुसार रोजगार मिले तो कोई अपना देश छोड़कर विदेश में रहने क्यों जाएगा? ऐसी शिक्षा प्रणाली के चलते माता-पिता भी खुद के चुने शिक्षा क्षेत्रों में ही बच्चों को आगे बढ़ाने को सोचते हैं। ऐसा करके वह बच्चों को भविष्य की नई दिशा नहीं दे पाते।

बच्चों को उनकी रुचि के अनुसार जागरूक करना चाहिए। केवल उन्हें सिविल सेवा, डॉक्टर और इंजीनियर बनने की होड़ में नहीं लगाना चाहिए। भारत की अपेक्षा अन्य देशों में बच्चों को डिजाइनिंग, गेमिंग आदि फील्ड में उतरने के लिये प्रोत्साहित किया जाता है। भारत में हर छोटे बड़े प्रोजेक्ट के लिए बाहरी देशों की कम्पनियों से समझौता करना पड़ता है। यह देश में शिक्षित बेरोजगार वर्ग के बढ़ने का एक और बड़ा कारण है।

भारतीय शिक्षा प्रणाली के अनुसार किसी भी बच्चे को आठवीं क्लास तक फेल नहीं किया जाएगा। यह शर्त बच्चे और शिक्षक दोनों के लिए उचित नहीं है। इसमें बच्चे पढ़ना नहीं चाहेंगे। शिक्षक पढ़ाना नहीं चाहेंगे। किसी तरह विद्यार्थी दसवीं और बारहवीं पास कर लेता है। शिक्षित युवा की श्रेणी में आकर वह रोजगार की मांग करने लगता है। इसमें मेहनत से पढ़ाई कर पास हुए बच्चों के रोजगार के अवसर कम हो जाते हैं। भारत की शिक्षा प्रणाली में सुधार कर बच्चों की पढ़ाई नई तकनीक को केन्द्र में रखकर की जा सकती है। ध्यान रहे कि इतनी बड़ी तादाद में बच्चों को हर साल एक ही फील्ड में रोजगार प्राप्त कराना संभव नहीं। नए अवसर बढ़ने से पढ़े-लिखे और हुनर प्राप्त बच्चों को भारत में ही अवसर मिलेंगे। देश के युवा देश में ही रहेंगे। देश की आर्थिक उन्नति में इजाफा होगा। साथ ही विकसित देशों की श्रेणी में आने की ओर देश बढ़ेगा।



गैप इयर ले रहे हैं तो योजना स्पष्ट होनी चाहिए



दिव्या
बीजेएमसी
तृतीय वर्ष

जीवन की यात्रा में कुछ ऐसे मोड़ आते हैं, जहां ठहर कर सोचना अनिवार्य हो जाता है। युवा अवस्था में शिक्षा और कॅरिअर के बीच लिया गया कोई भी निर्णय हमारे भविष्य की दिशा तय करता है। बारहवीं कक्षा के बाद या स्नातक की पढ़ाई पूरी करने के पश्चात हर विद्यार्थी के सामने प्रश्न होता है कि आगे की राह कैसी होनी चाहिए। कुछ विश्वविद्यालय की ओर बढ़ जाते हैं। कुछ नौकरी की तलाश में निकल पड़ते हैं और कुछ एक वर्ष का अंतराल लेकर अपने सपनों को पहचानने की कोशिश करते हैं। इस अंतराल को हम गैप इयर कहते हैं। सवाल यह है कि क्या यह ठहराव समझदारी का प्रतीक है या यह समय की बर्बादी है?



गैप इयर का विचार भले पश्चिम से आया हो, लेकिन इसके पीछे छिपी जरूरतें हर समाज में समान हैं। आज की शिक्षा व्यवस्था विद्यार्थियों से लगातार प्रदर्शन की अपेक्षा करती है। प्रतियोगी परीक्षाओं का दबाव, माता-पिता की उम्मीदें, समाज की तुलना और भीतर छिपा भविष्य का डर जैसे तत्व मिलकर युवा मन को उलझा देते हैं। ऐसे में कई विद्यार्थी ठहरना चाहते हैं ताकि वे खुद को संभाल सकें। गैप इयर उनके लिए वह सांस लेने की जगह है, जो उन्हें अपनी वास्तविक इच्छाओं और क्षमताओं को पहचानने का अवसर देती है। लेकिन भारतीय समाज में यह सोच अभी पूरी तरह स्वीकार्य नहीं है। यहां इसे अक्सर एक साल पीछे रह जाना या समय गंवाना कहा जाता है। यदि हम भावनात्मक दृष्टि से देखें तो गैप इयर कई बार आत्म खोज की यात्रा जैसा होता है। विद्यार्थी जब बारहवीं की परीक्षा पास करता है तो उसके सामने दुनिया भर के विकल्प खुल जाते हैं। इंजीनियरिंग, मेडिकल, चार्टर्ड अकाउंटेंसी, आर्ट्स, मैनेजमेंट, मीडिया, फैशन डिजाइनिंग आदि। इनमें से कौन सा रास्ता चुना जाए, यह निर्णय लेना आसान नहीं होता। इस उम्र में मन अस्थिर होता है। अक्सर हम दूसरों की अपेक्षाओं के बोझ तले दबकर वह रास्ता चुन लेते हैं, जो हमारा नहीं होता। गैप इयर इस असमंजस को दूर करने का साधन बन सकता है। यह विद्यार्थी को खुद से संवाद करने का अवसर देता है। कॅरिअर के लिहाज से देखा जाए तो गैप इयर हमेशा नकारात्मक नहीं होता। यदि इसे योजनाबद्ध ढंग से बिताया जाए तो यह भविष्य को और मजबूत बना सकता है। इस दौरान कोई नई भाषा सीखी जा सकती है। कंप्यूटर या तकनीकी ज्ञान हासिल किया जा सकता है। इंटर्नशिप के माध्यम से किसी पेशेवर माहौल को समझा जा सकता है या समाजसेवा के कार्यों में भाग लेकर जीवन की नई दृष्टि प्राप्त की जा सकती है। ये अनुभव

व्यक्ति को परिपक्व बनाते हैं। उसे यह समझने में मदद करते हैं कि उसकी वास्तविक रुचि किस क्षेत्र में है। कई बार विद्यार्थी किसी कोर्स में दाखिला ले लेते हैं, लेकिन बीच में एहसास होता है कि यह उनका क्षेत्र नहीं है। उन्होंने पहले गैप इयर लिया होता तो शायद यह असमंजस नहीं होता।

हमें यह भी मानना होगा कि गैप इयर हर किसी के लिए उपयुक्त नहीं है। अगर इसे बिना किसी योजना के लिया गया है तो यह समय की बर्बादी है। ऐसे में विद्यार्थी टालमटोल की आदत में फंस सकते हैं। पढ़ाई से दूरी बढ़ने पर दोबारा लय पकड़ना कठिन हो जाता है। समाज की तुलना और साथियों से पीछे छूटने का डर आत्मविश्वास को भी तोड़ सकता है। खासकर भारतीय परिवेश में, जहां हर परिवार चाहता है कि उनका बच्चा जल्द पढ़ाई पूरी कर नौकरी हासिल कर ले। वहां गैप इयर लेना कई बार पारिवारिक कलह का कारण बन जाता है। माता-पिता गैप इयर को यह मानकर अस्वीकार कर देते हैं कि उनका बच्चा पढ़ाई से भाग रहा है। लापरवाह हो गया है। अगर वह बच्चों की मानसिक स्थिति को समझेंगे तो पाएंगे कि यह ठहराव कई बार जरूरी होता है। प्रतियोगी परीक्षाओं में बार-बार असफल होना, लगातार पढ़ाई का दबाव और भविष्य की अनिश्चितता युवाओं को मानसिक तनाव की ओर ले जा सकती है। ऐसे में गैप इयर एक उपचार की तरह काम करता है।

यह केवल कॅरिअर और पढ़ाई तक सीमित नहीं है। यह जीवन के प्रति दृष्टिकोण को बदल सकता है। जब कोई विद्यार्थी गांवों में जाकर स्वयंसेवा करता है। गरीब बच्चों को पढ़ाता है। पर्यावरण संरक्षण जैसे कार्यों से जुड़ता है तो उसके भीतर संवेदनशीलता और जिम्मेदारी की भावना जन्म लेती है। यह अनुभव कक्षा की किताबों से कहीं बड़ा सबक सिखाता है। वही विद्यार्थी आगे चलकर किसी प्रोफेशन में जाता है तो उसके निर्णयों में मानवीय संवेदना झलकती है। यह भी सच है कि गैप इयर आर्थिक दृष्टि से चुनौती भरा हो सकता है। हर परिवार अपने बच्चे को एक साल की पढ़ाई या नौकरी से दूर रहने का खर्च नहीं उठा सकता। यात्रा, कोर्स, इंटर्नशिप या अन्य गतिविधियों में धन खर्च होता है। यदि परिवार आर्थिक रूप से सक्षम नहीं है तो यह विकल्प उनके लिए कठिन हो जाता है। इसीलिए गैप इयर की सफलता काफी हद तक योजना और संसाधनों पर भी निर्भर करती है। गैप न अच्छा है और न बुरा। यह पूरी तरह इस बात पर निर्भर करता है कि विद्यार्थी इसे किस योजना के साथ लेता है। अगर इसका उपयोग नई स्किल्स अर्जित करने और मानसिक स्वास्थ्य सुधारने के लिए किया जाए तो यह समझदारी है। अगर यह केवल टालमटोल के लिए लिया जाए तो समय नष्ट करना है। समाज और परिवार की भूमिका यहां अहम होती है। माता-पिता बच्चों पर अपने सपने थोपने के बजाय उनकी रुचियों को समझें। सही मार्गदर्शन दें तो गैप इयर के प्रति बने डर को कम किया जा सकता है।

यह स्वीकार करना जरूरी है कि हर बच्चा अलग है। उसकी सीखने और आगे बढ़ने की गति भी अलग है। किसी को जल्दी दिशा मिल जाती है तो किसी को थोड़े ठहराव की जरूरत होती है। उसे सोचने-समझने के लिए थोड़ा समय चाहिए होता है। अंतिम बात यह कि गैप इयर समझदारी भी है और समय की बर्बादी भी। यह इस बात पर निर्भर करता है कि इसे अपनाने वाला विद्यार्थी किस दृष्टिकोण से देखता है और इसका उपयोग कैसे करता है।



विद्यार्थियों के लिए खुला आसमान बनता है विश्वविद्यालय



शांभवी
बीजेएमसी
चतुर्थ वर्ष

जिंदगी अगर एक सफर है तो विश्वविद्यालय उस सफर के सबसे खूबसूरत पड़ावों में से एक है। स्कूल की बंदिशों से निकलकर जब पहली बार हम विश्वविद्यालय की जिंदगी से रूबरू होते हैं तो वह एहसास किसी आजाद चिड़िया के जैसा होता है। यह वह जगह होती है जहां हम न सिर्फ किताबों से सीखते हैं बल्कि जिंदगी के असल मायने से भी रूबरू होते हैं। पढ़ने-लिखने के साथ दोस्त बनाना, सपनों को पंख देना और अपने रास्ते खुद तय करना हम विश्वविद्यालय के कैम्पस में सीखते हैं। बचपन से जो कुछ भी पढ़ा-लिखा हो उसे जिंदगी में कैसे उतारा जाए यह हमें विश्वविद्यालय सिखाता है। कई बार इस सफर में दोस्त साथ होते हैं तो कुछ सफर हमें अकेले तय करना होता है। हम खुद को तन्हा पाते हैं। टूटते हैं, बिखरते हैं, लेकिन फिर से उठकर खड़ा होना सीखते हैं।

विश्वविद्यालय का पहला दिन किसी के लिए भी कभी न भूलने वाली याद लेकर आता है। कैम्पस की बड़ी इमारतें, नए चेहरे और इन सबके बीच अंजान शहर में घबराते हुए बच्चे! हर विद्यार्थी को अपने विश्वविद्यालय के पहले दिन जितना उत्साह होता है, उतनी ही घबराहट होती है। जहां एक ओर नए कैंपस, बड़ा सा कॉलेज, उसकी बड़ी इमारत को देखकर मन उत्साहित और आनंदित होता है। वहीं दूसरी ओर अनजाने चेहरे, अनगिनत लोग और अकेले होने का एहसास विद्यार्थियों की घबराहट का कारण बनता है। घर से दूर हॉस्टल के एक छोटे से कमरे को अपना घर मान पाना आसान नहीं होता, लेकिन धीरे-धीरे वह भी नई जिंदगी में ढल जाते हैं।

विश्वविद्यालय में आकर मिलने वाली आजादी धीरे-धीरे विद्यार्थियों को जिम्मेदारी का एहसास दिलाती है। अपने काम खुद करना, खुद के फैसले लेना, अपनी आय और व्यय का नियोजन करने जैसी चीजें किसी भी विद्यार्थी को आत्मनिर्भर होने के लिए तैयार करती हैं। समस्याओं का समाधान ढूंढते, ठोकर खाते और कुछ नया सीखते-सिखाते हुए एक विद्यार्थी का व्यक्तित्व काफी हद तक परिवर्तित हो जाता है। स्कूल से विश्वविद्यालय आने वाले विद्यार्थी जब यहां से निकलते हैं तो वह कमोबेश परिपक्व व्यक्तित्व के साथ जिंदगी की राह पर बढ़ जाते हैं।

कैम्पस की बात हो और दोस्ती यारी का जिक्र न हो, ऐसा कैसे संभव है। क्लास के नोट्स से लेकर कैंटीन की चाय तक में किसी विद्यार्थी का सबसे अधिक अगर कोई साथ निभाता है तो वह होते हैं उसके दोस्त। विश्वविद्यालय की दोस्ती कई मामलों में खास होती है, क्योंकि यह वह समय होता है, जब विद्यार्थी पहली बार जिंदगी की समस्याओं का सामना खुद से करते हैं।

लेकिन स्कूल की तरह विश्वविद्यालय में सिर्फ किताबों पर ध्यान नहीं दिया जाता। यहां पर विद्यार्थियों के व्यक्तित्व के निर्माण पर भी विशेष ध्यान दिया जाता है। सेमिनार, संगोष्ठी, कार्यशालाएं, वाद-विवाद, अलग-अलग प्रोजेक्ट्स और प्रयोग कार्यों के जरिए हम सीखने की प्रक्रिया को और अधिक जीवंत रूप प्रदान कर पाते हैं। इसी तरह तजुर्बे कमाते हुए जिंदगी का यह पड़ाव कैसे बीत जाता है, विद्यार्थियों को पता ही नहीं चलता। सभी विद्यार्थी अपनी पढ़ाई पूरी करके अपनी जिंदगी के रास्ते पर आगे बढ़ जाते हैं, लेकिन इतना तय है कि वे जब जिंदगी के इस कैंपस वाले सफर को पीछे मुड़कर देखते हैं तो उन्हें अपने इस कैम्पस की याद जरूर आती है।



मीडिया के जरिए भी लड़ा गया इजराइल–फिलिस्तीन युद्ध

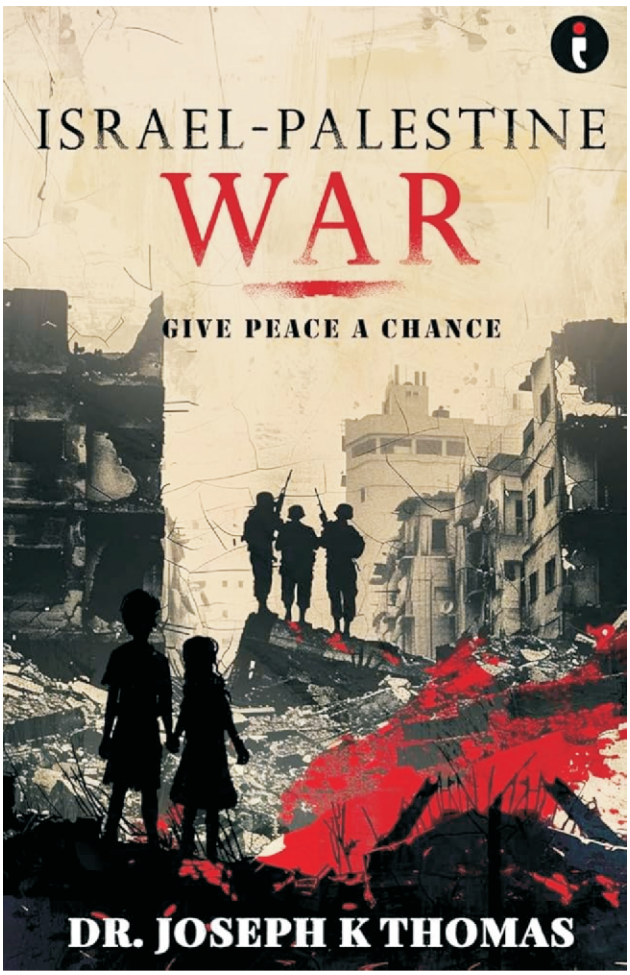


खुशी वशिष्ठ
बीजेएमसी
चतुर्थ वर्ष

जिस तरह 7 अक्टूबर 2023 को हिंसा अचानक भड़क उठी, उसने इजराइल और फिलिस्तीन ही नहीं पूरी दुनिया के सूचना तंत्र को झकझोर कर रख दिया। संघर्ष की वास्तविकता बमबारी, हवाई हमले और धरती पर बरपाए जा रहे कहर से मापी जाती है। इसी के साथ ट्वीट, हैशटैग, फोटो और मीडिया फ्रेम से भी इसकी पड़ताल की जा सकती है। कभी युद्ध का अर्थ गोलियों और मिसाइलों से तय होता था, पर अब यह परिभाषा बदल चुकी है। इजराइल–फिलिस्तीन संघर्ष ने दिखाया है कि आधुनिक युग में युद्ध का सबसे बड़ा हथियार सूचना है। यह संघर्ष केवल गाजा की धरती पर नहीं बल्कि मोबाइल स्क्रीन, न्यूज चैनलों और सोशल मीडिया प्लेटफॉर्मों पर भी लड़ा जा रहा है। संयुक्त राष्ट्र महासचिव एंतोनियो गुटेरेस ने अक्टूबर 2024 में कहा था 'यह सिर्फ युद्ध नहीं बल्कि सत्य की लड़ाई भी है।' आज हर तस्वीर, हर वीडियो और हर बयान इस बात को तय करता है कि किसका पक्ष नैतिक रूप से 'सही' ठहराया जाएगा।

सवाल इस बात का है कि मीडिया की भूमिका क्या है और उसके मुताबिक किसका सच सही है? इजराइल–फिलिस्तीन संघर्ष के दौरान मीडिया का स्वरूप वैश्विक विमर्श का केंद्र बन गया है। अंतरराष्ट्रीय समाचार संस्थानों के बीच यह प्रतिस्पर्धा चल रही है कि किसका सच जनता तक पहुंचे। अलजजीरा जैसे अरब चैनल गाजा की मानवीय त्रासदी को प्रमुखता देते हैं, जबकि बीबीसी और सीएनएन जैसी पश्चिमी संस्थाएं अक्सर इसे आतंकवाद और सुरक्षा के परिप्रेक्ष्य से प्रस्तुत करती हैं। 2024 की एक रिपोर्ट के अनुसार लगभग 80 प्रतिशत पश्चिमी मीडिया कवरेज में इजराइल के आत्मरक्षा अधिकार पर जोर दिया गया, जबकि गाजा में नागरिकों के हताहत पर सीमित ध्यान दिया गया। इस चयनात्मक रिपोर्टिंग ने अंतरराष्ट्रीय जनमत को गहराई से प्रभावित किया। संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार परिषद (यूएनएचआरसी) ने मई 2024 में अपनी रिपोर्ट में कहा कि मीडिया कवरेज में असमानता ने मानवीय संकट को उचित नैतिक संदर्भ में समझने की क्षमता को कमजोर किया है। यही कारण है कि अब मीडिया को युद्ध का 'चौथा स्थान' कहा जाने लगा है।

21वीं सदी का यह युद्ध मुख्यतः डिजिटल प्लेटफॉर्मों पर लड़ा जा रहा है। ट्विटर (अब एक्स), इंस्टाग्राम, टिकटॉक और यूट्यूब ने इस संघर्ष को रियल टाइम प्रोपेगेंडा में बदल दिया है। गाजा पर बम गिरने के कुछ ही मिनटों में वीडियो वायरल होते हैं, परंतु उनकी सत्यता संदिग्ध रहती है। यूरोपीय संघ की डिजिटल मीडिया मॉनीटरिंग रिपोर्ट 2024 के अनुसार,



अक्टूबर–दिसंबर 2023 के बीच इजराइल–फिलिस्तीन संघर्ष से संबंधित 12 हजार से अधिक भ्रामक या फर्जी पोस्ट साझा किए गए। यह आंकड़े बताते हैं कि सूचना अब जनमत निर्माण का हथियार बन चुकी है। मीडिया विश्लेषक नोम चॉम्स्की ने कहा था कौन सी खबर दिखेगी, यह सत्ता तय करती है, पर कौन सी खबर पर लोग विश्वास करेंगे, यह अब एल्गोरिद्म तय करता है। इस संघर्ष ने पत्रकारिता की निष्पक्षता को गहरे प्रश्नों में डाल दिया है। गाजा में सैकड़ों स्थानीय पत्रकारों ने जान गंवाई है। कमेटी टू प्रोटेक्ट जर्नलिस्ट्स की रिपोर्ट की मानें तो 2023–24 के बीच गाजा में 90 से अधिक पत्रकार मारे गए, जिनमें से अधिकांश फिलिस्तीनी थे। अंतरराष्ट्रीय न्यायालय में जनवरी 2024 में दक्षिण अफ्रीका की ओर से दायर याचिका में संभावित जनसंहार के आरोपों की जांच शुरू की गई। इस सुनवाई के दौरान मीडिया कवरेज पर भी सवाल उठे। क्या मीडिया के माध्यम से दुनिया को युद्ध की पूरी तस्वीर दिख रही है या केवल संपादित अंश इसकी कवरेज तक सीमित हैं? सोशल मीडिया अब केवल मनोरंजन का माध्यम नहीं रहा है। वह राजनीतिक और मानवीय विमर्श का मंच बन गया है। #फ्रीफिलिस्तीन और #आईस्टैंडविदइजराइल जैसे ट्रेंड्स ने लोगों की सोच और भावनाओं को ध्रुवीकृत कर दिया है। प्यू रिसर्च सेंटर 2024 की रिपोर्ट बताती है कि 18 से 30 वर्ष के युवाओं में से 64 प्रतिशत लोग इजराइल–फिलिस्तीन संघर्ष की जानकारी सोशल मीडिया से प्राप्त करते हैं, वहीं 27 प्रतिशत लोग पारंपरिक समाचार माध्यमों पर निर्भर हैं। यह आंकड़ा इस बात की पुष्टि करता है कि युवा अब इंस्टेंट इन्फॉर्मेशन पर भरोसा करते हैं, पर वह जानकारी कितनी सटीक या संतुलित है, यह एक बड़ा प्रश्न है।



संयुक्त राष्ट्र के मानवीय मामलों के समन्वय कार्यालय (ओसीएचए) के अनुसार, सितंबर 2024 तक गाजा में 35 हजार से अधिक लोग मारे जा चुके हैं। इनमें 40 प्रतिशत बच्चे हैं। अस्पतालों, स्कूलों और शरण स्थलों पर हमलों ने संकट को और भयावह बना दिया है। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने इसे 21वीं सदी का सबसे बड़ा मानवीय आपदा क्षेत्र बताया है। अंतरराष्ट्रीय आपराधिक न्यायालय ने मई 2024 में कहा कि वह दोनों पक्षों द्वारा संभावित युद्ध अपराधों की जांच कर रहा है। इन आंकड़ों के बीच सवाल उठता है कि क्या वैश्विक संस्थाएं केवल आंकड़े जारी करने तक सीमित रह गई हैं? क्या मीडिया ने इन संस्थाओं की आवाज को पर्याप्त स्थान दिया है? अधिकांश युवा दर्शक यह मानते हैं कि मानवीय पहलुओं पर फोकस कम और राजनीतिक नैरेटिव पर ज्यादा ध्यान दिया गया। अब नैरेटिव का दूसरा पक्ष समझते हैं। गोलियों की आवाजों के बीच भी कुछ आवाजें ऐसी हैं, जो शांति की अपील करती हैं। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर कई युवा संगठनों और विश्वविद्यालय समूहों ने ऑनलाइन कैम्पेन चलाए हैं– सीजफायर नाऊ, पीस फॉर गाजा और स्टॉप द वार जैसे हैशटैग ने वैश्विक समर्थन जुटाया। यह डिजिटल सक्रियता यह दर्शाती है कि आज की पीढ़ी हिंसा से नहीं संवाद से समाधान चाहती है। हम इसे सहानुभूति की डिजिटल क्रांति मान सकते हैं।

सूचना का नियंत्रण अब किसी सरकार या संपादक के पास नहीं बल्कि उन तकनीकी कंपनियों के पास है, जो तय करती हैं कि कौन सी पोस्ट किसे दिखाई जाएगी। यह स्थिति लोकतांत्रिक विमर्श के लिए एक नया खतरा है परंतु यह शक्ति तभी सार्थक है, जब इसका प्रयोग मानवता के हित में हो। पत्रकारिता अब केवल तथ्य प्रस्तुत करने का माध्यम नहीं है। वह नैरेटिव को चुनौती देने का दायित्व बन गई है। युवाओं के लिए यही सबसे बड़ा अवसर है कि वे सूचना के उपभोक्ता नहीं उसके विश्लेषक बनें। सही तथ्यों को जान समझकर ही उसका इस्तेमाल करें।

मनमानी से बचा सकती है वित्तीय साक्षरता



उत्कर्ष कुमार
बीजेएमसी
तृतीय वर्ष

आज के बदलते दौर में सारा विश्व सुपर फास्ट रेलगाड़ी में सवार होकर विकास की अंधी दौड़ में गोता लगा रहा है। कई विकसित देश खुद को समृद्ध बनाना चाहते हैं। विकासशील राष्ट्र पहले से ज्यादा तरक्की करना चाहते हैं तो गरीब मुल्क अपनी स्थिति में और सुधार चाहते है। इन सभी बदलावों की एक ही कुंजी है, उन देशों के युवा। यही कारण है कि यह देश युवाओं की समस्याओं को लेकर जागरुक रहने की बात करते हैं।

भारत की जनसंख्या का करीब 27.2 प्रतिशत युवा हैं, जो लगभग 37.1 करोड़ हैं। इससे भारत दुनिया की सबसे बड़ी युवा आबादी वाला देश बनता जा रहा है। तेजी से बदलते वैश्विक परिदृश्य में जहां आर्थिक अनिश्चितताएं और तकनीकी प्रगति जीवन को नई दिशा दे रही है। वहीं वित्तीय साक्षरता एक ऐसी कुंजी बन गई है, जो युवाओं को आत्मनिर्भरता और आर्थिक स्थिरता की ओर ले जाती है। यह न केवल धन प्रबंधन की कला सिखाती है, उसके साथ ही व्यक्ति को सूझबूझ से आर्थिक निर्णय लेने में सक्षम बनाती है। युवा, समाज का भविष्य और अर्थव्यवस्था की रीढ़ हैं। उनके लिए वित्तीय साक्षरता का महत्व अधिक है। यह उन्हें केवल व्यक्तिगत वित्तीय लक्ष्यों को प्राप्त करने में मदद न करके बल्कि आर्थिक जोखिम से बचाव और वर्षों तक समृद्धि सुनिश्चित करने में भी सहायता करती है।



वर्तमान समय में उपभोक्तावाद, डिजिटल भुगतान और निवेश के नए अवसर तेजी से बढ़ रहे हैं। युवाओं के लिए वित्तीय साक्षरता आवश्यक जीवन कौशल हो गया है। बिना वित्तीय ज्ञान के युवा आसानी से कर्ज के जाल में फंस सकते हैं। अनुचित निवेश कर सकते हैं या अपनी आर्थिक सुरक्षा को खतरे में डाल सकते हैं।

वित्तीय साक्षरता को बारीकी से समझें तो धन के प्रबंधन, बजट निर्माण, बचत, निवेश, कर्ज प्रबंधन और अर्थिक खतरों को समझने की क्षमता से है। यह एक ऐसी प्रक्रिया है, जो व्यक्ति को वित्तीय संसाधनों का प्रभावी ढंग से उपयोग करने और उचित निर्णय लेने में सक्षम बनाती है। युवाओं को वित्तीय रूप से साक्षर होना, उन्हें अपने वित्तीय भविष्य को नियंत्रित करने और आर्थिक स्वतंत्रता प्राप्त करने का मार्ग दिखाती है।

युवाओं में वित्तीय साक्षरता का महत्व अधिक है। युवा अवस्था वह समय है, जब व्यक्ति अपने कॅरिअर की शुरुआत करता है। यहीं से हम अपने भविष्य की नींव रखते हैं। यही वो समय है, जहां हमारी वित्तीय आदतें और निर्णय जीवन का आधार बनाते हैं। वित्तीय साक्षरता युवाओं को अपने संसाधनों का बुद्धिमानी से उपयोग करने और आर्थिक स्वतंत्रता की दिशा में कदम बढ़ाने में मदद करती है।

वर्तमान समय को डिजिटल युग कहा जाए तो इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। इस डिजिटल दुनिया में क्रेडिट कार्ड, पर्सनल लोन और आसान ईएमआई के विकल्पों की उपलब्धता ने युवाओं को कर्ज लेने के लिए प्रोत्साहित किया है। वैसे बिना वित्तीय साक्षरता के लोग उच्च ब्याज दरों और अनियोजित कर्ज के जाल में फंस सकते हैं। वित्तीय साक्षरता युवाओं को कर्ज के जोखिम, ब्याज दरों और कर्जदार की शर्तों को समझने में मदद करती है। इससे लोग मनमाने कर्ज से बच सकते हैं। कोरोना के दौर में लोग निजी विदेशी लोन कंपनियों के जाल में फंस जाते थे। मनमाने ब्याज पर कर्ज चुकाने को मजबूर होते थे। आज के समय में निवेश के कई विकल्प हैं। इसमें म्यूचुअल फंड, शेयर बाजार और क्रिप्टो करेंसी शामिल हैं। वैसे बिना उचित ज्ञान के निवेश करना जोखिम भरा हो सकता है। ऐसे में वित्तीय साक्षरता युवाओं को जोखिम और रिटर्न के बीच संतुलन समझने, निवेश के विभिन्न विकल्पों का मूल्यांकन करने और अपने वित्तीय लक्ष्यों के अनुरूप निवेश करने में सक्षम बनाती है।

व्यावहारिक रूप से देखा जाए तो जीवन अनिश्चितताओं से भरा है। जीवन में किसी भी वक्त ऐसी परिस्थिति आ सकती है, जब बीमारी, दवा का खर्च, महीनों नौकरी न होने से पैसे की तंगी हो सकती है। इस हालत में वित्तीय साक्षरता आपातकालीन फंड बनाने और बीमा जैसे जोखिम प्रबंधन उपाय को अपनाने के लिए प्रेरित करती है। इससे लोग प्रतिकूल परिस्थितियों में भी आर्थिक रूप से सुरक्षित रह सकते हैं। आधुनिक युग में उपभोक्तावाद का प्रभाव युवाओं पर दिखाई देता है। सोशल मीडिया, विज्ञापन और सामाजिक दबाव अक्सर उन्हें फिजूल खर्ची के लिए प्रेरित करता है। वह अनियोजित खर्च की ओर बढ़ते हैं, लेकिन वित्तीय साक्षरता उन्हें अपने बजट के प्रति सचेत बना सकती है। आपातकालीन फंड बनाने और बीमा का लाभ उठाकर आर्थिक दबाव से बचने में भी सक्षम बनाती है। उन्हें जरूरत और इच्छा के बीच अंतर समझने, बजट में रहने और अनावश्यक खरीदारी से बचने में मदद करती है।

युवाओं में वित्तीय साक्षरता को बढ़ावा देने के लिए सरकार, शैक्षणिक संस्थान, परिवार और समाज को मिलाकर प्रयास करने की आवश्यकता है। योर स्टोरी के अनुसार भारत के केवल 27 प्रतिशत युवा ही वित्तीय रूप से साक्षर हैं। यह आंकड़ा आंखें खोलने वाला है, जो बताता है कि वित्तीय जानकारी और सेवा तक पहुंच के बावजूद युवाओं का बड़ा हिस्सा बुनियादी ज्ञान के अभाव से जूझ रहा है। ऐसे में स्कूल और कॉलेज के पाठ्यक्रम में वित्तीय साक्षरता को विषय के रूप में शामिल करना चाहिए। इससे युवा कम उम्र से ही बजट बनाने, बचत और निवेश के बारे में सीख सकेंगे। अपना ऋण प्रबंधन समझदारी से कर सकेंगे। सरकारी और गैर सरकारी संगठन युवाओं के लिए वित्तीय साक्षरता पर कार्यशालाएं और सेमिनार आयोजित कर सकते हैं। सही वित्तीय साक्षरता युवाओं को ऋण लेने में सक्षम बनाती है। आर्थिक रूप से सशक्त और जिम्मेदार बनाती है। आज के डिजिटल युग में युवा सोशल मीडिया और ऑनलाइन मंचों पर अधिक सक्रिय हैं। वित्तीय साक्षरता को बढ़ावा देने के लिए यूट्यूब, इंस्टाग्राम आदि पर आकर्षक और सूचनात्मक सामग्री उपलब्ध कराई जा सकती है। वित्तीय प्रबंधन ऐप-मिंट, जेरोधा या ग्रोव-का उपयोग भी किया जा सकता है। साथ ही माता-पिता बच्चों को बचत, बजट और निवेश की आदतें सिखा सकते हैं।

भारत में वित्तीय साक्षरता का स्तर अपेक्षाकृत अभी कम है। हालांकि डिजिटल भुगतान और ऑनलाइन निवेश प्लेटफॉर्म की बढ़ती लोकप्रियता ने युवाओं में वित्तीय जागरूकता को बढ़ावा दिया है। फिर भी ग्रामीण क्षेत्रों और छोटे शहरों में वित्तीय साक्षरता की कमी एक बड़ी चुनौती है। युवाओं में वित्तीय साक्षरता न केवल व्यक्तिगत समृद्धि के लिए आवश्यक है बल्कि यह देश की आर्थिक प्रगति में भी अहम योगदान देती है। युवा अपने वित्तीय लक्ष्यों को प्राप्त कर समाज में आर्थिक स्थिरता और जिम्मेदारी का उदाहरण भी प्रस्तुत कर सकते हैं।



बदलते दौर में युवाओं की मानसिक जद्दोजहद



खुशी शाक्या
बीजेएमसी
तृतीय वर्ष

मानसिक स्वास्थ्य एक बढ़ती चुनौती के रूप में सामने आ रहा है। आज जब तकनीक और अवसरों की दुनिया हर दरवाजे पर दस्तक दे रही है, हमारे देश का युवा मानसिक तनाव और अपने स्वास्थ्य की चुनौतियों से जूझ रहा है। आंकड़े बताते हैं कि भारत की आबादी का बड़ा हिस्सा युवाओं का है, लेकिन यही हिस्सा तनाव, चिंता, अवसाद और आत्म संदेह जैसी समस्याओं का सबसे अधिक सामना कर रहा है। बढ़ते तनाव के कारण आत्महत्या जैसी घटनाओं में भी इजाफा हो रहा है।

सोशल मीडिया पर परफेक्ट लाइफ की होड़ उन्हें तुलना और दबाव की ओर धकेल रही है। पढ़ाई और नौकरी में सफलता का दबाव, परिवार की अपेक्षाएं और खुद को साबित करने की जिद कई बार युवाओं को थका देती है। केन्द्र सरकार ने मानसिक स्वास्थ्य सुधार के लिए राष्ट्रीय मानसिक स्वास्थ्य कार्यक्रम और मेंटल हेल्थ केयर एक्ट 2017 लागू किया है, जिसमें मानसिक स्वास्थ्य को मौलिक अधिकार माना गया है। राष्ट्रीय मानसिक स्वास्थ्य सर्वेक्षण 2015-16 के अनुसार भारत में हर सात में से एक व्यक्ति मानसिक विकार से प्रभावित है। डब्ल्यूएचओ की 2023 की रिपोर्ट कहती है कि भारत में लगभग 56 मिलियन लोग अवसाद और 38 मिलियन लोग एंग्जाइटी डिसऑर्डर से पीड़ित हैं। लांसेट की रिपोर्ट बताती है-भारत में आत्महत्या से मरने वालों में सबसे अधिक संख्या 15 से 29 वर्ष के युवाओं की है।

चुनौती यह है कि मानसिक स्वास्थ्य को लेकर समाज में अब भी झिझक है। बहुत से युवा अपनी समस्याओं को साझा करने से डरते हैं। उन्हें लगता है कि लोग उन्हें कमजोर समझेंगे। आगे चलकर यही समस्याएं उनकी जान ले सकती हैं। वैश्विक स्तर पर आत्महत्या, युवाओं की मौत का चौथा सबसे बड़ा कारण है। यह स्थिति कोविड-19 महामारी के बाद और गंभीर हो गई। जब डिप्रेशन और चिंता के मामलों में करीब 25 प्रतिशत तक बढ़ोतरी दिखी।

स्कूलों और कॉलेजों में काउंसिलिंग और मानसिक स्वास्थ्य शिक्षा को बढ़ावा देना चाहिए। युवाओं को सोशल मीडिया के स्वस्थ उपयोग के लिए जागरूक करना होगा। मानसिक स्वास्थ्य सेवाओं का विस्तार होना चाहिए। अधिक मनोचिकित्सक, हेल्पलाइन और ऑनलाइन काउंसलिंग उपलब्ध कराई जानी चाहिए। देश में कानून की सही ढंग से इंप्लीमेंटेशन होनी चाहिए। सबसे अहम यह कि समाज में मानसिक बीमारियों से जुड़े भेदभाव और कलंक को खत्म किया जाए। युवा बिना झिझक बात रख सकें।

मानसिक स्वास्थ्य की अनदेखी करना युवाओं के साथ समाज और राष्ट्र के भविष्य के लिए हानिकारक है। इसलिए जरूरी है कि मानसिक स्वास्थ्य को शारीरिक स्वास्थ्य जितना ही महत्व दिया जाए। जब युवा मानसिक रूप से स्वस्थ होंगे तभी वे पूरी क्षमता से समाज और राष्ट्र निर्माण में योगदान दे पाएंगे। जब तक मन स्वस्थ और संतुलित नहीं होगा तब तक शरीर पूरी तरह स्वस्थ नहीं रह सकता। मानसिक रूप से सशक्त युवा ही अपनी पूरी क्षमता से पढ़ाई, काम, रिश्तों और समाज में योगदान दे सकता है। मानसिक स्वास्थ्य हर उस सपने और हर उस प्रयास की जड़ है, जो भविष्य की ओर ले जाता है।



योग, आयुर्वेद और अध्यात्म से बनती भारत की पहचान



खुशबू
बीजेएमसी
द्वितीय वर्ष

भारत की पहचान केवल उसकी भौगोलिक सीमाओं और राजनीतिक ताकत से नहीं बनती बल्कि उसकी संस्कृति, दर्शन और जीवनशैली से भी निर्मित होती है। यही वह शक्ति है, जिसे आज की भाषा में साफ्ट पावर कहा जाता है। यह शक्ति किसी देश की सैन्य या आर्थिक क्षमता पर आधारित न होकर उसके सांस्कृतिक मूल्य, परंपराएं और विचारधारा पर आधारित होती है। भारत के पास यह धरोहर हजारों वर्षों से है। योग, आयुर्वेद और अध्यात्म ने न केवल भारतीय समाज को आकार दिया है बल्कि अब वे वैश्विक स्तर पर भी प्रभाव डाल रहे हैं।

भारत के सॉफ्ट पावर में से एक योग केवल व्यायाम या आसनों का अभ्यास नहीं है। योग शरीर और मन के बीच संतुलन स्थापित करता है। जब दुनिया औद्योगिक क्रांति के बाद तनाव और अवसाद की ओर बढ़ रही थी तब योग ने पश्चिमी देशों में एक विकल्प के रूप में जगह बनाई। आज दुनिया के लगभग हर बड़े शहर में योग स्टूडियो मौजूद हैं। न्यूयॉर्क, लंदन, टोक्यो और सिडनी की सड़कों पर लोग सुबह-सुबह योग का अभ्यास करते हुए दिखाई देते हैं। संयुक्त राष्ट्र ने 2015 में 21 जून को अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस घोषित किया। यह दिन इस बात की मान्यता है कि योग एक सार्वभौमिक धरोहर है। योग से स्वास्थ्य लाभ होता है, लेकिन उससे कहीं ज्यादा यह व्यक्ति को आंतरिक शांति की राह पर ले जाता है। पश्चिमी देशों में योग पावर योगा और हॉट योगा में भी बदल गया है। यह इस बात का प्रमाण है कि योग अब सिर्फ परंपरा न होकर वैश्विक संस्कृति का हिस्सा बन गया है। भारत के लिए यह एक गर्व का विषय है।



आयुर्वेद भारतीय परंपरा का दूसरा स्तंभ है। आयुर्वेद शब्द का अर्थ है-जीवन का विज्ञान। इसमें केवल दवाइयां ही नहीं अपितु आहार, दिनचर्या और मानसिक संतुलन पर भी जोर दिया गया है। पश्चिमी देशों में जब लोग एलोपैथी की दवाइयों के दुष्प्रभाव से परेशान होने लगे तब उन्होंने वैकल्पिक चिकित्सा की ओर रुख किया। आयुर्वेद इस संदर्भ में एक सुरक्षित और प्राकृतिक विकल्प बनकर सामने आया। आज अमेरिका और यूरोप में आयुर्वेदिक स्पा और उपचार केंद्र तेजी से लोकप्रिय हो रहे हैं। वहां के लोग हर्बल औषधियों और पंचकर्म जैसी चिकित्सा पद्धतियों की ओर आकर्षित हो रहे हैं। आयुर्वेद का प्रभाव केवल चिकित्सा नहीं एक जीवनशैली है। इसमें बताया गया है कि किस मौसम में क्या खाएं, कैसे सोएं, कैसे जागें और कैसे मानसिक शांति बनाए रखनी चाहिए। आधुनिक समय में वेलनेस इंडस्ट्री का जो नया रूप सामने आया है उसमें आयुर्वेद की भूमिका अहम है।

दुनिया में भारत का सबसे बड़ा योगदान अध्यात्म के रूप में रहा है। यह वह धरोहर है, जिसने भारत का सिर ऊंचा किया है। अध्यात्म कहता है कि जीवन का असली लक्ष्य केवल भौतिक सुख नहीं बल्कि आत्मा की शांति और ज्ञान है। उपनिषदों के ज्ञान से लेकर भगवद्गीता की शिक्षा तक और बुद्ध के मध्यम मार्ग से लेकर आधुनिक संतों के उपदेश तक भारतीय अध्यात्म ने दुनिया को आत्म खोज की राह दिखाई है। स्वामी विवेकानंद ने जब शिकागो में 1893 में भाषण दिया तो उन्होंने भारतीय अध्यात्म को पूरी दुनिया के सामने प्रस्तुत किया। उनके शब्द आज भी गूंजते हैं। बताते हैं कि भारत का योगदान विज्ञान और तकनीक के साथ मानवता की गहरी



समझ में भी है। पश्चिमी उपभोक्तावादी समाज में लोग बाहर से सम्पन्न हैं, लेकिन भीतर से खालीपन महसूस करते हैं। ऐसे में ध्यान और माइंडफुलनेस जैसी चीजें उन्हें राहत देती हैं। इन सभी का मूल भारत की आध्यात्मिक परंपरा से जुड़ा है। महर्षि महेश योगी ने ट्रांजिशनल मेडिटेशन को लोकप्रिय बनाया, जिसने बीटल्स जैसे मशहूर संगीतकारों को भी प्रभावित किया। आज अमेरिका और यूरोप में लाखों लोग मेडिटेशन का अभ्यास करते हैं।

इस तरह योग, आयुर्वेद और अध्यात्म ने भारत को एक अलग पहचान दी है। यह पहचान केवल संस्कृति तक सीमित नहीं रही। इसने राजनीति और अर्थव्यवस्था को भी प्रभावित किया है। जब किसी अंतर्राष्ट्रीय मंच पर विदेशी नेता योग का अभ्यास करते हैं तो केवल स्वास्थ्य की बात नहीं होती, वह भारत की सांस्कृतिक शक्ति का प्रतीक बन जाता है। दुनिया भर में भारत की शांति, संतुलन और प्रकृति के साथ तालमेल वाली छवि उसकी विदेश नीति को भी मजबूत करती है। जब प्रधानमंत्री ने संयुक्त राष्ट्र में योग दिवस का प्रस्ताव रखा तो उन्हें 177 देशों का समर्थन मिला। यह भारत की सॉफ्ट पावर का सबसे बड़ा प्रमाण है।

भारत की ताकत यह है कि उसने अपनी प्राचीन परंपराओं को आधुनिक समय के अनुसार ढाल लिया है। योग साधना के साथ आधुनिक जीवनशैली का हिस्सा बन गया है। आयुर्वेद केवल पुरानी औषधि पद्धति नहीं बल्कि वेलनेस टूरिज्म का केंद्र बन गया है। अध्यात्म आश्रमों तक सीमित नहीं रहा बल्कि वह कॉर्पोरेट दफ्तरों और विश्वविद्यालयों तक पहुंच चुका है। आज की पीढ़ी तकनीक से जुड़ी है, लेकिन वह मानसिक शांति भी चाहती है। इसका उत्तर भारत के पास है। इसी कारण भारत की सॉफ्ट पावर लगातार प्रासंगिक बनी है।

योग और जीवन



दीपिका
बीजेएमसी
द्वितीय वर्ष

योग करे प्राणतत्व का संचार
भविष्य होगा गुलजार
नित्य जो करे योग का पालन
देश में करें योग का प्रचार
योग है जीवन की सच्ची राह
दे तन-मन को शक्ति और चाह
प्राणायाम से श्वास सधे
मन के सारे दुख हरे
प्राणायाम से सांस सधे
रोग-दोष सब दूर भगे
आसन करें हर रोज अगर
तन में भर जाए नया जोर
योग है जीवन की मधुर धारा
तन-मन को देता नया सहारा
श्वासों की लय में छुपा है ज्ञान
योग से मिलता आत्म-सम्मान
सुबह की किरण संग योग अपनाओ
तन की थकान को दूर भगाओ
मन की चंचलता शांत हो जाए
अंतर की ज्योति स्वयं जगमगाए
रोगों से लड़ने की शक्ति बढ़े
जीवन पथ पर साहस चढ़े
योग सिखाता संतुलित रहना
हर परिस्थिति में आगे बढ़ना
भारत की यह अमूल्य पहचान
योग से ऊंचा हो मानव सम्मान
नित्य करो योग, बनो निरोग
सुखमय बने जीवन, दूर हों रोग।

खालिद हुसैनी के अफगान में महिलाओं का जीवन

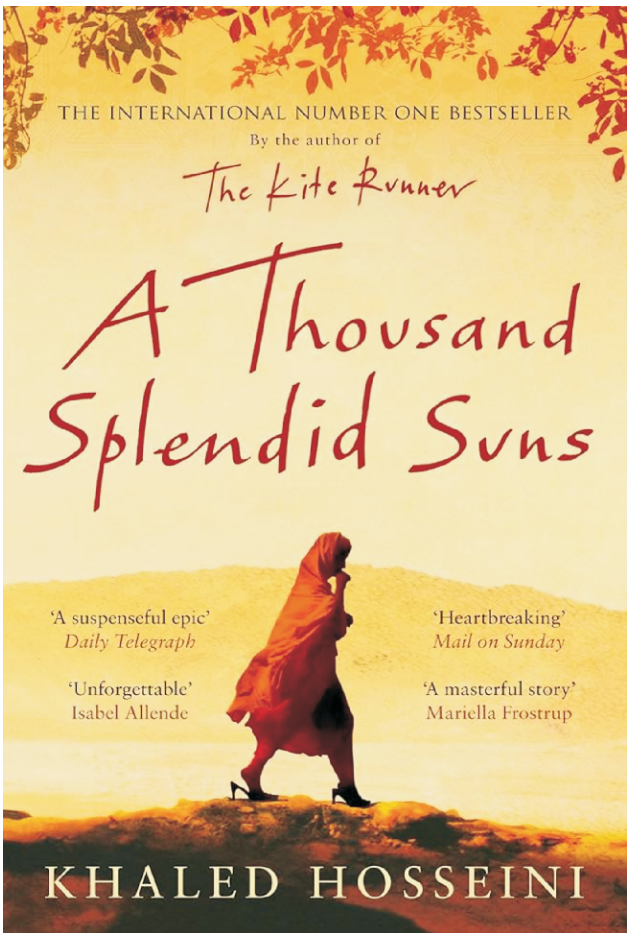


सोनिका
बीजेएमसी
तृतीय वर्ष

जब खालिद हुसैनी की किताब 'ए थाउजेंड स्पलेंडिड सन्स' प्रकाशित हुई तो दुनिया को न केवल अफगानिस्तान के युद्धों की बल्कि उसकी खामोश पड़ी आधी आबादी की कहानी भी पता चली। महिलाओं को अक्सर इतिहास से बाहर कर दिया जाता था। उनके अस्तित्व को राजनीति और खूनखराबे की पृष्ठभूमि में धकेल दिया जाता था, लेकिन हुसैनी ने इसे बदला। उन्होंने महिलाओं को फिर से कहानी के केंद्र में रखा। हुसैनी की महिलाओं को पढ़ना दशकों के युद्ध, पितृसत्ता और धार्मिक नियंत्रण में अफगान महिलाओं की स्थिति को समझना है, लेकिन यह एक प्रतिध्वनि भी है क्योंकि साहित्य चाहे काबुल हो या दिल्ली, तेहरान हो या लंदन, लंबे समय से एक ही संघर्ष को दर्शाता रहा है। महिलाएं दिखने, लिखे जाने और याद किए जाने की मांग करती रही हैं। अफगानिस्तान में महिलाएं विरोधाभासों के तीखे मोड़ पर रही हैं। एक दौर में उन्होंने काबुल के विश्वविद्यालयों में पढ़ाई की। डॉक्टर के रूप में काम किया और सड़कों पर परदे में घूमती रहीं। दूसरे दौर में उन्हें बुर्का पहनने के लिए मजबूर किया गया। स्कूलों में प्रवेश नहीं दिया गया। टखने दिखाने पर सार्वजनिक रूप से कोड़े मारे गए। देश का इतिहास प्रगति और प्रतिगमन के चक्रों में लिखा गया है। प्रत्येक चक्र के केंद्र में महिलाएं ही इसकी कीमत चुकाती हैं।

हुसैनी का खामोश लेखन कल्पना के साथ गवाही भी है। महिलाओं का जीवन व्यक्तिगत पसंद से कम, पिता, पति, भाई, राजनेता के आदेशों से ज्यादा प्रभावित होता है। अफगानिस्तान में एक महिला होना नक्शों पर नहीं बल्कि शरीरों पर खींची गई सीमाओं के भीतर रहना है। इसके उलट हुसैनी बेजुबान पीड़िता के सहज रूपक का भी विरोध करते हैं। उनके पात्र लचीलेपन, हास्य, वफादारी और शांत विद्रोह का प्रतीक हैं। उनके माध्यम से वे विरोधाभास दिखाते हैं कि अफगान महिलाएं दुनिया में सबसे ज्यादा उत्पीड़ित हैं। फिर भी सबसे ज्यादा सहनशील हैं। वह आकाश का खामोश आधा हिस्सा हैं। एक टूटी हुई जमीन का भार ढो रही हैं। फिर भी सपने देखने के रास्ते खोज रही हैं।

हुसैनी अफगानिस्तान के लिए वही करते हैं, जो साहित्य ने हमेशा किया है। महिलाओं की वास्तविकताओं का साक्षी बनना। जहां ज्यादातर इतिहास विफल हो जाते हैं, पितृसत्तात्मक समाज शायद ही कभी महिलाओं के जीवन को ईमानदारी से दर्ज करते है। पर, उपन्यास, कविताएं और नाटक उनके अनुभवों के रूप में काम करते हैं। खालिद के साथ ही वर्जीनिया वूल्फ ने भी साहित्य के आइने में बहुत कुछ दिखाया है। उन्होंने कहा था कि सदियों से महिलाओं को



बिना कलम के एक कमरे में बंद रखा गया है। सिमोन द बोउवार ने विश्लेषण किया कि कैसे महिलाओं को द्वितीय लिंग बनाया गया। हुसैनी का योगदान अफगान महिलाओं को इस वैश्विक साहित्य के दायरे में लाने का है। उनका उपन्यास आदिवासी महिलाओं के शोषण पर लिखने वाली महाश्वेता देवी जैसी भारतीय लेखिका की आवाज के साथ खड़ा है यह स्त्री की इच्छाओं और घरेलू घुटन के बारे में लिखने वाली कमला दास के साथ। यह सिल्विया प्लाथ की कविता और मार्गरेट एटवुड के उपन्यासों के साथ खड़ा है, जो बताते हैं कि कैसे पश्चिम ने पिंजरों से संघर्ष किया है–कुछ सोने के, कुछ अदृश्य।

भारत के साहित्य में महिलाओं की कहानी प्राचीन और आधुनिक दोनों है। महाभारत और रामायण ऐसी महिला पात्रों से भरे पड़े हैं, जिनके भाग्य ने राज्यों के चक्र को मोड़ दिया। इसमें शामिल हैं सीता, द्रोपदी, गांधारी। चित्रा बनर्जी दिवाकरुणी जैसी लेखिकाएं द्रोपदी को एक मोहरे के रूप में नहीं बल्कि एक क्रोधी और प्रभावशाली महिला के रूप में दर्ज करती हैं। औपनिवेशिक और उत्तर औपनिवेशिक काल में भारतीय महिलाओं का लेखन पितृसत्ता के विरुद्ध एक हथियार बन गया। इस्मत चुगताई ने उर्दू में स्त्री कामुकता के बारे में लिखा। अमृता प्रीतम ने विभाजित देश में पंजाबी महिलाओं को दु:ख और प्रेम की भाषा दी। अरुंधति रॉय ने द गॉड ऑफ स्मॉल थिंग्स के माध्यम से दिखाया कि कैसे जाति और लिंग आपस में गुंथकर महिलाओं का दम घोंटते हैं। अफगानिस्तान की तरह भारत में भी महिलाओं की स्थिति विरोधाभासों से भरी है। शिक्षा ने नेता, सीईओ और वैज्ञानिक पैदा किए हैं। फिर भी यही समाज दहेज हत्याओं, सम्मान के नाम पर हत्याओं और व्यवस्थागत चुप्पी से जूझ रहा है। दुनिया भर में साहित्य महिलाओं के उत्पीड़न और उनके लचीलेपन का दर्पण रहा है। मध्य पूर्व में मिस्र की नवल अल सादावी ने पितृसत्तात्मक और धार्मिक ढांचों में महिलाओं पर होने वाली शारीरिक और मानसिक हिंसा का वर्णन किया है। अफ्रीका में त्सित्सी डांगारेम्बगा की नर्वस कंडीशंस ने सांस्कृतिक और लैंगिक अपेक्षाओं के विरुद्ध शिक्षा के लिए एक लड़की के संघर्ष को चित्रित किया है। यूरोप में शार्लोट ब्रोंटे की जेन आइरे ने आत्म सम्मान और जुनून के अधिकार की मांग की। बाद में एटवुड की द हैंडमेड्स टेल ने कल्पना की कि महिलाओं के लिए आधुनिक स्वतंत्रताएं भी कितनी नाजुक हो सकती हैं। लैटिन अमेरिका में इसाबेल अलेंदे का मैजिकल रियल्यम तानाशाही और क्रांति के इतिहास में महिलाओं के धीरज को केंद्र में रखता है। ये रचनाएं दिखाती हैं कि संदर्भ अलग–अलग होने के बावजूद महिलाओं की स्थिति में एक अजीब सा सूत्र जुड़ा है।

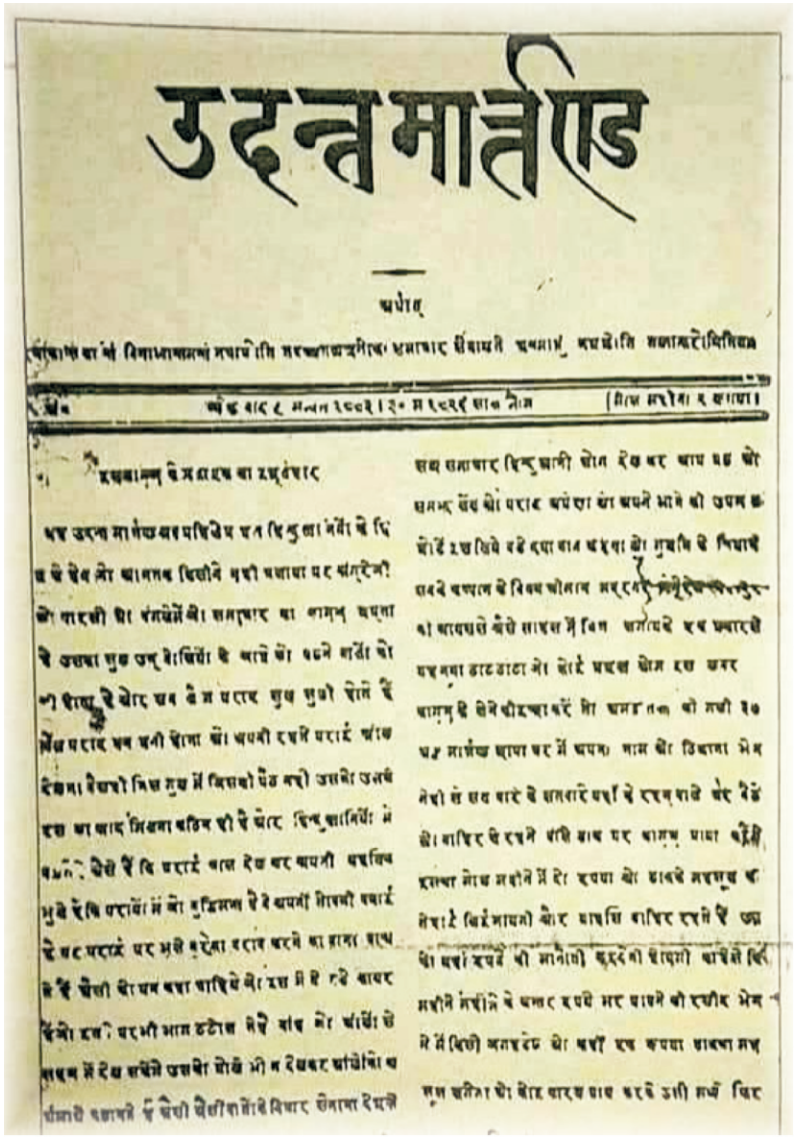
सवाल उठता है कि हुसैनी महिलाओं का चित्रण कैसे करते हैं इसका क्या महत्व है? साहित्य हाशिए पर पड़े लोगों के लिए क्या करता है? इसका जवाब यह है कि साहित्य धारणा को नया रूप देता है। कहानियां महिलाओं को देखने के हमारे नजरिए को बदल सकती हैं। वे आज्ञाकारी अफगान महिला, पारंपरिक भारतीय पत्नी, पश्चिमी गृहिणी की रूढ़िवादी धारणाओं को तोड़ सकती हैं। वे हमें याद दिला सकती हैं कि हर घूंघट, हर साड़ी, हर रसोई के दरवाजे के पीछे एक इंसान है, जिसकी एक धड़कन, एक याद और एक सपना है। अफगान महिलाओं का दर्द दूर नहीं है। यह उन भारतीय गांवों में भी गूंजता है, जहां लड़कियों को स्कूल जाने से रोका जाता है। पश्चिमी दफ्तरों में जहां महिलाएं कांच की छतों से जूझती हैं। अफ्रीकी समुदायों में बाल विवाह जारी हैं। हुसैनी ने अपने उपन्यास का शीर्षक एक फारसी कविता से लिया है, जिसमें काबुल की प्रशंसा करते हुए लिखा गया है, 'अ थाउजेंड इस स्प्लेंडिड सन्स' यानी हजारों शानदार सूरज। लेकिन असली शानदार सूरज वे महिलाएं हैं, जिनका लचीलापन अंधेरे में चमकता है। खालिद हुसैनी का 'अ थाउजेंड स्प्लेंडिड सन्स' सिर्फ अफगानिस्तान के बारे में नहीं है। यह महिलाओं की सार्वभौमिक स्थिति और उनकी सच्चाइयों को सामने लाने में प्रमुख भूमिका निभाता है।

साहित्य की वैश्विक परंपरा, जो दर्पण और हथियार दोनों के रूप में है। यह उत्पीड़न को दर्शाता है, लेकिन उसका विरोध भी करता है। यह जख्मों को दर्ज करता है, लेकिन सपनों की फुसफुसाहट भी देता है। यह हमें बार–बार दिखाता है कि आधा आसमान महिलाओं का है और यह भी कि दुनिया तब तक पूरी नहीं होगी, जब तक उनकी कहानियां पूरी सच्चाई से सामने न आ जाएं। चाहे वह कहानी फिर संघर्ष के बाद जीत की हो या उत्पीड़न के साथ अंत की।

"

यह उदन्त मार्तण्ड अब पहले पहल हिन्दुस्तानियों के हित के हेत जो आज तक किसी ने नहीं चलाया, पर अंग्रेजी ओ पारसी ओ बंगले में जो समाचार का कागज छपता है, उसका सुख उन बोलियों के जान्ने ओ पढ़ने वालों को ही होता है। इससे सत्य समाचार हिन्दुस्तानी लोग देखकर आप पढ़ ओ समझ लेवें जो पराई अपेक्षा न करें जो अपने भाषे की उपज न छोड़ें। इसलिए बड़े दयावान करुणा ओ गुणनि के निधान सबके कल्याण के विषय गवर्नर जनरल की आयत से ऐसे साइत में चित्त लगायके एक प्रकार से यह नया ठाठ ठाठा। जो कोई प्रशस्त लोग इस खबर के कागज के लेने की इच्छा करें अपना नाम ओ ठिकाना भेजने से ही सतवारे के सतवारे यहाँ के रहने वाले घर बैठे और बाहर के रहने वाले डाकघर पर कागज पाया करेंगे।

"



उदन्त मार्तण्ड

पं. युगल किशोर शुक्ल

(1788–1853)

अंश, संपादकीय, उदन्त मार्तण्ड